देवेन्द्र किशोर जैन द्वारा

श्रीसरस्वती प्रिन्टिङ्ग वर्कस् आरा

में

मुद्रित

प्यारी बहनो !

लो

यह रत्नमाला बड़े प्यार से तुम्हारे गले में पिन्हाती हूँ आशा है इसे सदैव हरी भरी रक्खोगी।

तुम्हारी

चन्दाबाई

मेरी नई नई दो बातें !!

प्यारी कन्याओ! यह लो, तुम लोगों की विदुषी माता ने पुनर्वार इस "रत्न-माला" की मणियों को खराद पर चढ़ा कर और भी अधिक प्रकाशपूर्ण—उज्ज्वलतामय तथा दीप्तिमान् बना दिया है। नये—चिकने—चमकीले रङ्गीले—और मुलायम रेशमी धागे में उन जगमगाती मणियों को पिरो दिया है! यदि यह कण्ठाभरण तुम लोगों के कल-कण्ठ में शोभा सरसावेगा—हृदय में ज्ञानामृत बरसावेगा—तो एक माता की मनोरथ-वेलि और भी लहलहायेगी, और सम्भव है कि, भविष्य में उस कलित ललित-वेलि के सुगंधित फूलों से तुम्हारा अंचल भर जाय!

प्यारी बहिनो! फिर से पुस्तक का कलेवर नख-शिख अलंकृत किया गया है। मुझे पूर्ण विश्वास है कि तुम लोग इस पुस्तिका को अपनी प्यारी सखी सहेली बनाओगी—अपने ही योग्य समझ कर अपनाओगी। यह प्रभामयी माला तुम लोगों की सहचरी बन कर बहुत कुछ भलाइयाँ कर सकेगी—ऐसा मेरा दृढ़ अनुमान है। इस

पुस्तक की उपयोगिता समझाने और गुण-कारिता दर्शाने में तुम लोगों का अमूल्य समय खटाना नहीं चाहता। इस विषय में इतना ही कहना अलम् है कि—करकंगन को आरसी क्या ?"

प्यारी बालिकाओ तथा बहिनो!

घर के काम काज करने से, जो कुछ फुरसत पाना;
कभी कभी इस शिक्षा को भी, देख अवशि तुम जाना॥

—'पूजा—फूल'।

अच्छा, अब मैं तुम लोगों की शुभ कामना करता हुआ विदा होता हूँ। पुनः कुछ नये उपहार लेकर आऊँगा।

तुम लोगों का मङ्गलाभिलाषी—

प्रेम-मन्दिर,
आरा

—कुमार देवेन्द्रप्रसाद जैन।

प्रकाशक का प्राक्कथन।

विद्या हमारी भी न तब तक काम में कुछ आयगी।
अर्द्धाङ्गियों को भी सु-शिक्षा दी न जब तक जायगी।

—भारत-भारती

प्रिय बालिकाओ! जो दो बातें मैं यहाँ कहना चाहता हूँ, उन में पहली बात तुम, होनहार देवियों, से ही कहने की है, वह यह है कि, अब तुम्हारी माताएं तुम्हारे लिये मणि-कञ्चन की मालाओं से कहीं अधिक मूल्यवती "रत्नमाला," तुम्हारी कण्ठ-शोभा के लिये, तैयार करने लगीं। तुम्हारे विनोदार्थ, पहले तुम्हारी माता गुड़िया आदि खिलौने देती थीं कि, उन्हें लेकर, तुम प्रसन्न होओ, और सोने तथा जवाहिरात के आभूषण से तुम्हारे अङ्गों को भूषित करती थीं, पर वे सब निस्सार थे; लेकिन अब तुम्हें अपने को भाग्यवती समझना चाहिए कि, तुम्हारी माताएँ ऐसी ऐसी सौरभीली मालाएँ बना रही हैं, जिन के धारण करने से, तुम्हारा मनो-विनोद के साथ साथ लौकिक और पारलौकिक सुख-लाभ भी होवे। यह "उपदेश-रत्नमाला" उसी का एक छोटा सा नमूना है। इस को धारण करने से तुम्हारा जीवन शोभामय होगा,

और तुम संसार-यात्रा में पूरी पूरी सफलता लाभ करोगी। इसलिये, प्यारी आशा कुसुम वहिनो! इस माला को वड़े चेत से पहिनो; जिसमें कभी इनके रत्न, जो इसमें गुंथे हुए हैं—भूलने न पावें! मेरी इस बात को याद रखना।

दूसरी वात—मैं स्त्री-शिक्षा के प्रेमियों से कहना चाहता हूँ। यह वड़ी ही प्रसन्नता की वात है कि, अव भारत-महिलाएँ भी कार्य्य-क्षेत्र में प्रवेश करने लगीं। प्राचीन काल में, ऐसी दशा नहीं थी कि, स्त्रियाँ सव तरह के सार्वजनिक कार्यों से अलग रखी जाएँ; वल्कि हमारी प्राचीन देवियाँ, जीवन के सभी कार्यों में तत्पर और कुशल पायी जाती थीं। इतिहास और पुराण खुले कण्ठ से इसकी साक्षी भरते हैं। परन्तु, काल दोष से इस भाव का अभाव हो गया था। वड़ी प्रसन्नता का विषय है कि, हमारी भारतीय देवियाँ, अव पुनः, अपने गौरव और कर्त्तव्य को समझने लगी हैं, और, समस्त भारत में इस विषय को लेकर एक धूमसी मची हुई है, तथा हमारे भाई और वहिनें, स्त्री-शिक्षा के प्रचार एवं स्त्री-समाज की उन्नति के प्रयत्न में, अग्रसर हो रही हैं। लोगों का यह विश्वास था, और उचित विश्वास था, कि जव तक हमारी देवियाँ, अपनी वालिकाओं के लाभार्थ, उत्तमोत्तम पुस्तकादि स्वयं न लिखने लगेंगी, तव तक इस महत्त्वपूर्ण कार्य के उन्नति शिखर पर पहुँचने में वहुत देर होगी। हर्ष का विषय है

कि ,इस उद्देश्य की पूर्ति के अर्थ, हमारी एक परम पूजनीया जैनमाता ने भी "कन्या विद्यावलम्बिनी पुस्तकमाला का यह प्रथम पुष्प, "उपदेश-रत्नमाला" नामक, दो गुच्छों में लिख कर, कन्याओं का उपकार किया है तथा अन्यान्य भगिनियों के लिये, अच्छा अनुकरणीय उदाहरण छोड़ा है। इस "माला में" कैसे कैसे रत्न पिरोये गये हैं सो तो इस रत्न की खान में प्रवेश करने से ही, ज्ञात होंगे। ऐसी अच्छी पुस्तक लिखने के लिये, क्या स्त्री-शिक्षा का प्रेमी मण्डल—मुझे उनकी तरफ से भी—श्रीमती लेखिका जी को धन्यवाद देने की आज्ञा सहर्ष प्रदान करेगा? आशा है, इस विषय में सभी मुझ से सहमत होंगे। मेरी इच्छा है कि, यह पुस्तक, सब भाषाओं में अनुवादित होकर, प्रचलित की जाय। बड़े सौभाग्य का विषय है कि इस पुस्तक की उपयोगिता देख कर इसका अनुवाद महाराष्ट्र भाषा में भी हो गया और यह कन्या पाठशालाओं की पाठ्य पुस्तकों में भी स्वीकृत हो चुकी। और, प्रत्येक प्रान्त के कन्या-विद्यालयों में तथा प्रत्येक स्त्री-शिक्षा-प्रेमियों के हाथ में यह रत्नगुच्छ शोभा पाने लगा। अन्त में, मैं निवेदन करना चाहता हूँ, कि इस पुस्तक से जो कुछ आय होगी, वह-शिक्षा के ही प्रचार में लगा दी जायगी। इसका यथेष्ट प्रचार और आदर होने से, इस माला के अन्यान्य पुष्प भी, शीघ्र भेंट किये जायँगे। अब, महाशयो! ज़रा—

सोचो, नरों से नारियाँ किस बात में हैं कम हुईं ?
मध्यस्थ वे शास्त्रार्थ में हैं भारती के सम हुईं ?

* * * *

क्या कर नहीं सकतीं भला
यदि शिक्षिता हों नारियाँ ?
रणरङ्ग, राज्य सुधर्म रक्षा, कर चुकीं सुकुमारियाँ !

* * * *

—भारतभारती

प्रेम-मन्दिर, आरा
जुलाई १९१२

स्त्री-शिक्षा का एक प्रेमी,
कुमार देवेन्द्रप्रसाद जैन

भूमिका ।

प्रिय बहिनो !

कितने ही दिनों से, हमारे समाज में, इस बात की चर्चा हो रही है कि, कुछ स्त्रियोपयोगी पुस्तकें लिखी जायँ।

"स्त्री शिक्षा से क्या लाभ है !" इसके लिखने की, यहाँ पर कोई आवश्यकता नहीं है। क्योंकि प्रायः सारे भारत वर्ष में, इस विषय की उपयोगिता पर आन्दोलन मच रहा-है। और, समस्त धर्मावलम्बी सभ्य मनुष्य, इसको लाभदायक स्वीकार भी कर चुके हैं, तथा इसके प्रचारार्थ कुछ स्त्रियोपयोगी पुस्तकें भी निकाल चुके हैं और निकाल रहे हैं। परन्तु, एक बात यह बड़े विचार की है कि, स्त्रियों के योग्य यदि स्त्रियाँ ही अच्छी अच्छी पुस्तकें लिखें तो नारी-सम्प्रदाय का आशातीत उपकार हो। प्यारी बालिकाओं के समक्ष उज्ज्वल और ज्वलन्त आदर्श उपस्थित हों, तथा और भी चोटीले प्रभाव पड़े। हमारी बहिनें यदि अपने पतित-समाज का शीघ्र उद्धार करना चाहेंगी; तो उनके लिए यह कोई बड़ा काम नहीं, वरन् लीलामात्र है।

ऐसी अवस्था में, चाहिये तो था यह कि, कोई सुश

विदुषी मण्डली इस काम को हाथ में लेती, और अनेक छोटी बड़ी शिक्षाप्रद पुस्तकें स्त्री-समाज को प्रदान कर संतुष्ट करती। तभी कुछ हो सकता है, अन्यथा नहीं; परन्तु खेद है कि, हमारी प्यारी विदुषी वहिनों की दृष्टि इधर नहीं फिरती।

पाठिका वहिनो! मैं एक सरल पुस्तक, आपकी प्यारी कन्याओं के हितार्थ, भेंट करती हूँ। और, आशा करती हूँ कि, आप की बालिकाएँ इससे अवश्य कुछ लाभ उठाएँगी। इस पुस्तक में, विशेषतया उन बातों का उल्लेख किया गया है, जो कि आरम्भ से ही, विद्यार्थी जीवन के लिये, अत्यावश्यक हैं। और जिनके न जानने के कारण ही, आज हमारी पुत्रियाँ, उच्च विद्या में प्रवेश करने से, वञ्चित रहती हैं। सर्वानन्तर इस बार एक प्रार्थनापूर्वक

नया सन्देश

अपनी प्रिय पाठिकाओं को यह सुनाना है कि, इस संस्करण में इस पुस्तक का अच्छी तरह परिमार्जन किया गया है। यथा सम्भव इसे सर्वोपयोगी बनाने की चेष्टा की गई है। छोटी पुत्रियों के गले की शोभा सामग्री तो यह है ही—बड़ी २ वहिनों को भी पूरा २ लाभ पहुँचाने में यह पीछे नहीं रहेगी। जिन अपने सुयोग्य भाई कवियों और ग्रन्थकारों की पुस्तकों से फूल कली चुन-चुनकर मैंने इस गुलदस्ते में यत्र-तत्र गूंथ कर कन्याओं के हितार्थ

शोभा बढ़ा दी है। उन अपने पूज्य भारतीय भाइयों से क्षमा चाहती हूँ और कृतज्ञता प्रकाश करती हुई धन्यवाद देती हूँ। भारतीय भगिनियों के लिये—आशा है-भरोसा भी है—मेरे शुभैषी भ्रातागण उदारता प्रकट करेंगे।

अब तो मुझ बन्धु-भगिनियों से यही सादर निवेदन है कि, इस रत्नमाला को एक बार अवश्य अपनी प्यारी कन्याओं को पहनाएँ। इन रत्नों की जागरित ज्योति से उनका कोमल हृदय आलोकित करें—इसमें कहे नियमों पर चलने का उपदेश दें।

विशेष प्रार्थना यह है कि, इस पुस्तक में जो-जो त्रुटियाँ रह गई हों उनके लिए बहिनों से क्षमा चाहती हूँ—विश्वास है वे त्रुटियों को सुधार कर पढ़ेंगी। सम्भवतः यथाशक्ति इस द्वितीय संस्करण का भली-भाँति संशोधन संवर्द्धन, परिष्कार और सुधार किया गया है।

बहिनों की सेविका, पुत्रियों की हितेच्छुका

आषाढ़ शुक्ल ५
सन् १९१८

चन्दा बाई जैन

हर्ष सूचना ।

विद्याविनोदिनी पाठिका बहनो !

परम हर्ष के साथ यह तृतीय संस्करण भी आपकी सेवा में समर्पित किया जाता है। इस पुस्तक के विषय में विशेष विवेचन करने की आवश्यकता नहीं दीखती; क्योंकि पहले दोनों संस्करणों की अत्युत्सुक मांग ने ही इसकी सर्व प्रियता को स्पष्ट कर दिया है।

प्रायः यह पुस्तक कन्याशालाओं की तृतीय कक्षा में पढ़ाई जाती है तदनुकूल विद्यार्थिनी कन्याओं के लाभार्थ इस संस्करण में भी कुछ शब्दों का हेर फेर कर दिया गया है ।

आशा है कि स्वामी अनन्तवीर्य के "चेतोहरं भृतं यद्वन्नद्या नव घटे जलम्" इस वाक्यानुसार नये आकार प्रकार में यह उपदेश-रत्नमाला सब को अधिक रुचिकर होगी ।

भारतवर्ष में प्रथम तो स्वयं ही पुस्तकों के प्रकाशन एवं सञ्चालन करने में अनेक कठिनाइयाँ उपस्थित थीं तिसपर भी महासमर ने आर्थिक मार्ग और भी कठिन

कर दिया है। तोभी वहिनों की सुविधा के लिये इस पुस्तक का मूल्य अत्यन्त अल्प रखा गया है।

मुझे विश्वास है कि सुलभलभ्य इस माला को वहिनें अवश्य ही अपनाएँगी, तथा केवल मंगाकर ही संतुष्ट न होंगी वरन् स्वयं पढ़कर अपनी प्रिय पुत्रियों को भी पढ़ाएँगी, और इनके उपदेशों को कार्य्य में परिणत करके स्त्री-शिक्षा की अमली कार्रवाई कर दिखाएँगी।

राजगिर
२७-११-१६२५

शुभचिन्तिका
चन्दावाई जैन

विद्याभिलाषिणी वहिनो!

आप के अनुराग से आज उपदेश रत्नमाला का चतुर्थ संस्करण प्रकाशित होता है, इस के लिये वर्ष भर से आप लोग उत्कण्ठित थीं, आशा है अब सन्तुष्ट हो जायँगी और इसको पूर्ववत् ही अपनायँगी।

खेद का विषय है कि इसके पूर्व प्रकाशक कुमार देवेन्द्र प्रसाद का स्वर्गवास हो गया; जिससे स्त्री-शिक्षा-प्रचार के कामों को वड़ा भारी धक्का लगा है। और इसी लिये इस ४ संस्करण के निकलने में विलम्ब हुआ है। स्वर्गीय कुमार की पूर्व लिखित भूमिकाएँ इस संस्करण में भी ज्यों की त्यों छाप दी गई हैं, उन्हें आप लोग देखें और लाभ उठाएँ

ता: १५ मई सन् १६२५

चन्दावाई जैन

रत्न-सूची।

प्रथम गुच्छ

(शारीरिक, नैतिक और मानसिक उपदेश)

द्वितीय गुच्छ ।

(धार्म्मिक शिक्षा)

मंगलाचरण

ज्ञानसिन्धु भगवन्त जिन, श्री अरहन्त महन्त।
नमहुँ सदा तिहुँ लोक-हित. कर्म-कलंक-दहन्त ॥
नमहुँ सदा जिन वाणि को. हृदय माँहि दृढ़ धार।
श्री गुरुचरणन प्रीति धरि. नमूँ परम हितकार ॥
बाल्यसमय पुत्रिन हृदय. विद्यारुचि अधिकाय।
"कन्या विद्यावलम्बिनी"; याही ते प्रकटाय ॥

श्रीवीतरागाय नमः ।

उपदेश-रत्नमाला

प्रथम गुच्छ ।

विद्या ।

प्यारी पुत्रियो! प्रथम तुमको यह जानना चाहिये कि, विद्या क्या वस्तु है और इस के पढ़ने से क्या २ लाभ होते हैं? :—

विद्या एक ऐसी चीज़ है कि जो संसार के सम्पूर्ण पदार्थों में उत्तम और अक्षय है। इसका कभी नाश नहीं होता, और दूसरों को देने से यह घटती नहीं, वरन् बढ़ती ही जाती है। विद्या ऐसा सर्वोत्तम धन है, जिसे कोई चुरा नहीं सकता। यह धन सदा साथ रहता है और विदेश में मित्र का काम करता है। मनुष्य के असली कर्त्तव्य के ज्ञान को पूरी तरह से बतलानेवाली विद्या

हीं है। विद्या पढ़ कर मनुष्य ज्ञानी कहलाता है, न पढ़ने पर मनुष्य-जन्म-सम्बन्धी ज्ञानशक्ति होने पर भी अज्ञानी, मूर्ख और मूढ़ कहलाता है। विद्या-विहीन मनुष्य की गिनती पशुओं में की जाती है।

विद्या दो प्रकार की होती है—धार्मिक और लौकिक। (१) धार्मिक वह है—जिसके पढ़ने से धर्म्म के गूढ़ तत्त्व मालूम हो जायँ और पापों से बचने का उपदेश पाकर आत्मा उज्ज्वल होने का उपाय करे। (२) लौकिक वह है—जिसके पढ़ने से गृहस्थी के सब कार्य्य ठीक ठीक आ-जावें और यश, धन, नीरोगता, सन्तान-सुख, कुटुम्ब-रक्षण आदि अनेक सुखों को पैदा करने योग्य ज्ञान आत्मा को हो जावे।

पुत्रियो ! विद्या से जो जो लाभ हैं उन सब का वर्णन करने के लिये मनुष्य समर्थ नहीं हो सकता। विद्या ही से बुद्धि बढ़ती है, तथा मूर्खता का नाश होकर सर्वत्र आनन्द मिलता है। माता केवल तुम्हारे शरीर को पैदा करने वाली है और यह विद्या यश; धन, सौभाग्य, मान, धर्म आदि समस्त उत्तम पादार्थों को देनेवाली सुखदायिनी माता है। जिस घर में विद्या का निवास है उस घर में सदा शान्ति, सुख, सदाचार, कल्याण और धन-धान्य का निवास है। जहाँ इसका प्रकाश नहीं है वहाँ सदा कलह, फूट, निरादर,

निधनता, अधर्मीपना, आदि दुर्गुणों का ही डेरा जमा रहता है।

विद्या रूपी रत्न से, हैं जो लोग विहीन।
वे हैं इस संसार में, सब द्रव्यों से हीन॥
—पूजाफूल।

प्रिय कन्याओं! निश्चय जान रक्खो कि, वही कन्या सुखी होगी, वही माता, पिता की दुलारी रहेगी और वही पति की प्यारी बनेगी, जो पढ़ी लिखी है, बुद्धिमती है, और उसी से कुल की शोभा भी है। जो पढ़ी लिखी और धर्मज्ञ नहीं है, वह रूपवती और आभूषणों से लदी हुई होने पर भी, सुन्दर साटन और रेशमी, ताशबादले के कपड़े पहने रहने पर भी, मूर्खा होने के कारण सब से नीची है; वह किसी के आदर करने योग्य नहीं है।

पुत्रियो! तुम भी ऐसे विचारों से कि पढ़ने का काम तो पुत्रों का है, विद्या की रुचि मत घटाओ। नहीं, नहीं, पढ़ना, लिखना, धर्मज्ञ और चतुर होना पुत्र-पुत्री दोनो के लिये परमावश्यक है। तुम अपने जीवन को यश, सुख, गौरव और सन्तोष से युक्त बनाने के लिये; तथा मेल-मिलाप और आनन्द बढ़ाने के लिये, अथवा परोपकार करने के लिये अवश्य ही विद्या पढ़ो, विदुषी बनो, सुख-सम्पन्न होओ, खूब कड़ा परिश्रम करके गुणों को ग्रहण करो।

विद्या अनेक योग्य साधनों के मिलने से प्राप्त होती है। नियम-पूर्वक चलना, सुसङ्गति में रहना, समय का सम्मान करना, शरीर को स्वच्छ और स्वस्थ रखना, मस्तिष्क में शान्ति स्थापित करना, मन एकाग्र रखना इत्यादि साधनों की आवश्यकता रहती है। प्रिय पुत्रियो! हृदय खोलकर एक बार इस विद्याधन को अपने भीतर भर लो; फिर सारा जीवन आनन्द से व्यतीत होगा।

जिन उपायों से विद्या सरलता-पूर्वक प्राप्त होती है उन का कुछ वर्णन आगे किया जाता है उस पर ध्यान देने और उसके अनुसार चलने से तुम अवश्य विदुषी और सुशिक्षिता होकर आनन्द में जीवन व्यतीत करोगी।

॥ दोहा ॥

विद्या-सम गौरव नहीं, विद्या-सम धन नाहिं।
विद्या-हित-सम हित नहीं, पारसमणि जग माहिं॥
हा! विद्या बिन जगत में, पुत्री पावें दुक्ख।
मूर्खा रह कर जन्म भर, खो बैठें सब सुक्ख॥
सुख मारग जाने नहीं, केहि विधि पावें सुक्ख।
ज्यों ज्यों चितवें सुक्ख को, त्यों त्यों पावें दुक्ख॥

॥ सोरठा ॥

विद्या देत बताय, जग में मारग सुक्ख को।
ताते अति मन लाय, पुत्री तुम विद्या पढ़ो॥

प्रातःक्रिया।

"प्रातकाल की वायु को, सेवन करत सुजान।
ता ते मुख-छवि बढ़त है, बुद्धि होत बलवान॥"
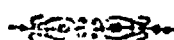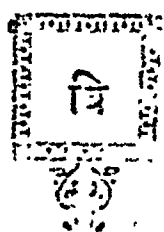
स्त्रियों और कन्याओं को प्रातःकाल उठना चाहिये। सूर्योदय से पहले का उठना बहुत गुणकारी है। काम-काज करने में भी बहुत सुविधा पड़ती है। सूर्योदय होने पर जो जागती हैं, उनका सारा दिन आलस्य में ही बीतता है। इस लिये, प्रिय पुत्रियो! खूब सवेरे उठो, फिर तुम्हारे सब काम सुगमता से, ठीक समय पर, होते रहेंगे। शरीर में स्फूर्ति और फुर्ती बनी रहेगी। जिस प्रकार सब ऋतुओं में बसन्त उत्तम है, इसी प्रकार दिन-रात के २४ घण्टों में प्रातःकाल का समय उत्तम है। उस समय जो कुछ सोचा विचारा जाता है वह शीघ्र ही स्मरण हो जाता है क्योंकि, प्रातःकाल में आत्मा की विचार-शक्ति अच्छी तरह, शुद्ध, तीव्र और प्रबल रहती है।

जो बालिका अपने पाठ पर इस समय ध्यान देती है, उस को बहुत जल्दी स्मरण हो जाता है—जिस पर जरा

रहता है, विस्मरण नहीं होता । असाध्य पाठ भी दत्तचित्त हो कर याद करने पर सहज ही समझ में आजाता है ॥

प्रातहिं उठि के नित नित, कीजे प्रभु को ध्यान ।
याते जग में होत सुख, अरु, उपजे सद्ज्ञान ॥

पश्चात् बिस्तर को उठ कर यथास्थान रख दो । यदि उठानेवाली दासी हो तो उसी से उठवा दो । रात्रि का बिछावन अवश्य उलट कर धरना चाहिये । ऐसा नहीं कि, दिन भर उसी को खूंदती रहो । इसके अनन्तर शौच से छुट्टी पाकर, दातून और मंजन से मुँह धोओ । बड़े बड़े डाक्टरों का मत है कि, दाँत और जिह्वा खूब साफ़ रखनी चाहिये । जो कन्या रात भर के जमे हुए मैल को दाँतों पर से ठीक ठीक साफ नहीं करती है वह रोगी हो जाती है, मुख से दुर्गन्ध आने के कारण सब लोग उसे पास बैठाने से घृणा करते हैं, यों वह लज्जा को प्राप्त होती है ।

मुख धोकर ताजे और ठण्डे जल से स्नान करो । यदि बहुत जाड़ा पड़ता हो अथवा शरीर अस्वस्थ (बीमार) अथवा कमज़ोर हो तो गर्म जल से स्नान करना उचित है ।

कूएँ का ताज़ा अथवा तालाब का स्वच्छ जल काम में लाना चाहिये । जल को सदा छान कर काम में लाना चाहिये । विधिपूर्वक जल से स्नान कर के शरीर गाढ़े कपड़े से पोंछना चाहिये, जिससे शरीर पर पानी न रह

जाय और रोमों के सब छिद्र साफ़ हो जायँ। शरीर पर मैल जमने से रोमों के छिद्र बन्द हो जाते हैं, जिससे बाहर की साफ हवा शरीर के भीतर नहीं जा सकती। यह अवस्था बीमार बना देती है। अतएव, नित्य नहाना और सारी देह भली भाँति साफ़ रखना सब बालिकाओं का सबसे पहला काम है। प्रातर्वायु-सेवन से शरीर स्वस्थ रहता है। साफ़ छत, आँगन अथवा फुलवाड़ी में सौ पचास कदम टहलना बड़ा हितकारी है। निकलते हुए सूरज का मीठा और लाल प्रभा की ओर निहारने से आँख की जोत बढ़ती है, हृदय की कली खिलती है, शरीर की प्रभा बढ़ती है और शक्ति पैदा होती है।

प्यारी पुत्रियो! नित्यक्रियाओं से निपट कर कुछ काल परमात्मा के ध्यान में मन को लगाओ। यह सब आवश्यक कार्य्य हो जाने पर अपने घर की सब चीजों को यथास्थान रख दो। सब वस्तुएँ सजी रहेंगी तो देखने में अच्छी मालूम होंगी और जब जब जिसकी ज़रूरत पड़ेगी तब तब वह बिना प्रयास—बिना ढूंढ़े ही—मिल जायगी। घर और आँगन में सुबह शाम झाड़ बुहार करलो। दूसरे के भरोसे अपना काम मत बाक़ी रहने दो। घर का कोना कोना साफ़ रखो।

वस्त्र-भूषण-धारण।

वस्त्र ऋतु के अनुकूल और साफ़ धारण करना चाहिये। पुत्रियो! तुम कभी भी गोटे पट्टे की तरफ़ मत देखो। गर्मी में हलके और जाड़े में गाढ़े—गर्म कपड़े पहिनो। रात के अलग और दिन के तथा पाठशाला में जाने के वस्त्र अलग अलग रखो। कई कपड़े एक साथ व्यवहार में रखने से, सबके सब कम फटते हैं, और एकही को घसीटने से जल्दी फट जाता।

जिस में शरीर झलके ऐसा बारीक़ कपड़ा स्त्रियों को कदापि नहीं पहनना चाहिये। साड़ी-लहँगे का पहनना अच्छा है; और अपने देश का ही वेश रखना उचित है, परन्तु स्वच्छता की ओर विशेष ध्यान देना चाहिए। बहुमूल्य वस्त्र भी मैला होने से बुरा दीखता है, और कम क़ीमत वाला कपड़ा भी साफ़ होने से अच्छा मालूम होता है, इसलिए वस्त्रों को साफ़ रखो, शीघ्र शीघ्र धोबी से न धुलवा कर स्वयं ही धोवो। गुजरात देश की बहिनें तो बहुधा अपने हाथ से ही वस्त्रों को बिलकुल उजला धो लेती हैं, और

सुनते हैं कि, जापान में भी स्त्रियाँ स्वयँ ही वस्त्र धो लेती हैं। वस्त्र साफ़ रखने से मन निर्मल और शरीर हलका रहता है। सदैव कपड़े, मौके २ पर, थोड़ा भेद लिये हुए पहिनो। यह नहीं कि निमन्त्रण खाने जाने के लिये तो १०) की साड़ी पहन कर जाओ और घर में महामलीन पहिने रहो। सो नहीं, बल्कि निमन्त्रण में यदि ५) की साड़ी पहिनती हो तो घर में २॥) की साफ़-सुथरी पहिना करो। अथवा जैसी तुम्हारी हैसियत हो, उसी के समान कपड़े पहिनो। कपड़े शरीर ढकने के लिये हैं, न कि केवल दिखलाने के लिये। तुम अपना पहनावा अपनी सामर्थ्य के अनुसार ही रक्खो। कभी शान शौकत के भड़कावे में मत पड़ो। कहा है—"तेते पाँव पसारिये जेती लांबी सौर।" रजाई से ज्यादे पैर पसार दिये जायं तो उघड़ जाते हैं। इसी तरह अपने वित्त से बाहर काम करना बुरा है। कहीं कहीं स्त्रियाँ और पुत्रियाँ कचा रङ्ग बहुत काम में लाती हैं, परन्तु मेरे विचार में यह जल्दी भद्दा होकर कपड़े और शरीर को ही उलटा गन्दा बना देता है। इस लिये रङ्गदार वस्त्र रखने हों तो पक्के रङ्ग का रखना उचित है, नहीं तो सफ़ेद ही रहने देना चाहिए।

प्यारी पुत्रियो! केश ही स्त्रियों का सहज भूषण है। केशों को कंघी से नित्यप्रति स्नानानन्तर शीघ्रता से सँवार

लिया करो। बाल झाड़ने से मस्तक हलका रहता है। जो केशों को साफ़ २ नहीं रखती उसको मस्तक-शूल से प्रायः पीड़ित होना पड़ता है। इस व्यथा से बचना चाहो तो बालों की सफ़ाई की ओर ध्यान दो।। इसी तरह नाक, कान, दाँत, नख, जिह्वा, आँख, एड़ी, पाँव का तलवा और तलहथी—सब को अच्छी तरह साफ़ रखना ही तुम्हारे सब से अच्छे गहने हैं। इसी से तुम्हारी शोभा बढ़ेगी और तब तुम्हारे विचार भी विमल और विकसित हुआ करेंगे।

चाँदी और सोने के गहनों से देह पर बोझ मत लादो। दो चार सौभाग्य सूचक गहने हलके तथा आवश्यक पहन कर ही सन्तोष कर लिया करो। नूपुर, कड़े, हार, चूड़ी, कंकण, सीसफूल, कर्णफूल, बेसर और अंगूठी इत्यादि साधारण भूषण ही काम में लाने योग्य हैं। अनेकों भद्दे और रद्दी भूषणों का भार ढोना व्यर्थ है। दया, क्षमा, सुशीलता, शुद्धाचार तथा विद्योपार्जन इत्यादि ही तुम्हारे भव्य भूषण हैं। इन्हीं भूषणों से आत्मा की सुन्दरता बढ़ती है। हाथ का भूषण है—'दान'। हृदय का भूषण है 'ज्ञान'। कान का भूषण—'धर्म-ग्रन्थ-श्रवण'। मुख का अलङ्कार ताम्बूल नहीं है बल्कि 'सत्य' और 'प्रिय वाणी' है। शरीर की शोभा चन्दन से नहीं होती बल्कि 'परोपकार और 'पति-

सेवा' से होती है। अतएव बाह्याडम्बरों को न बढ़ा कर धर्म-शीलता एवं सत्य-प्रियता से ही अपने अन्तरङ्ग को और सत् कृत्यों से शरीर को सजाओ।

भगवद् भजन।

संसार में जितने छोटे बड़े सभ्य मनुष्य हैं वे सब नित्य परमात्मा का ध्यान स्मरण करते हैं। नीचे से नीचे और ऊँचे से ऊँचे हर एक मनुष्य का कर्त्तव्य है कि वह प्रथम भगवद्भक्ति कर ले तब और कुछ करे।

पुत्रियो! तुम भी प्रथम परमात्मा का स्मरण करो, जिससे तुम्हारे सभी कामों में सफलता हो और तुम्हारी आत्मा शुद्ध रहे। ऊपर लिखी विधि से स्नान कर, धुला हुआ पवित्र वस्त्र पहन कर देवालय में जाओ। प्रवेश करते ही जय जय शब्द उच्चारण करो। खूब उत्साह से परमात्मा के सम्मुख नमस्कार करो। पश्चात् तीन प्रदक्षिणा दे कर शुद्ध द्रव्य लवङ्ग, बादाम, पुष्प, चन्दन, धूप, दीप, नैवेद्य, फल आदि को मन्त्र बोल कर अर्पण करो फिर स्तोत्र पढ़ो।

जिस प्रकार कोई बड़े राजा महाराजा से भेंट करने जाता है, तो सम्मान-सूचक भेंट लेकर उनके चरणों के आगे रखता है उसी तरह देवाधिदेव प्रभु के सम्मुख अर्घ चढ़ाने से तुम को पुण्य होगा और उनके गुण गाने से तुम्हारा हृदय शुद्ध होगा।

शरीर स्वस्थ रखने के लिये जैसे प्रतिदिन खाना, नहाना, व्यायाम करना आदि आवश्यक है, उसी तरह मन को पवित्र रखने के लिये नित्य प्रति भगवान का स्मरण करना भी परम आवश्यक है। जो मनुष्य परमात्मा का नित्य स्मरण करता है और उसके गुणों को गान करता है, वह इस जन्म में तरह तरह के सुख भोगकर अन्त में स्वर्ग मोक्ष के सुख को पाता है।

पुत्रियो! जो कोई सरल स्तोत्र तुमने सीख रखा है उसी को पढ़ कर, भगवत्-दर्शन कर, गुणगान करो। ऐसे मीठे शब्दों में गुणगान करो, जिसमें सुननेवालों को भी आनन्द मिले।

स्तोत्र पढ़ने के बाद १५।२० मिनिट तक धर्म्म-शास्त्र का स्वाध्याय करो, जिससे ज्ञान बढ़ता रहे और तुमको अपने धर्म्म का पूरा पूरा व्योरा धीरे धीरे मालूम हो जावे।

एक एक बूंद करके तालाब भर सकता है। तुम एक एक पन्ना रोज धर्म्म-शास्त्र पढ़ोगी तो कुछ दिनों में तुम्हारा

हृदय-रूपी भाण्डार ज्ञान से भर जायगा।

स्वाध्याय के बाद स्थिरता हो तो शान्ति से बैठ कर थोड़ी देर माला पर वा उंगलियों पर णमोकार मन्त्र वा अन्य मन्त्र को जपो। प्रभु का नाम रटो इससे तुम्हारे अन्दर भक्ति बढ़ेगी और आगे के लिये धार्म्मिक कार्य्यों में स्थिरता होती जायगी।

भोजन-शुद्धि।

भोजन-शुद्धि पर अधिक ध्यान देना चाहिये। भोजन के पदार्थ शुद्ध और उन्हें बनाने की विधि ठीक ठीक होनी चाहिये। दिन भर में ४ वार भोजन करना उचित है, दो वार हलका और दो वार पूर्ण।

पुत्रियो! प्रातःकाल (७ वजे तक) अपनी प्रातः क्रियाओं और देवदर्शनादि से निपट कर (गर्मी में छः वजे, जाड़े में ७ वजे तक) नाश्ता कर लो। जाड़े में यदि घर में हो तो ताज़ा दूध, मेवा, मिश्री, या और ही कोई हलकी वस्तु थोड़ी सी अवश्य खानी चाहिये। ये चीज़ें न हों तो,

मूंग की दाल छौंक कर (और, शाम को गर्म जल में भिगोये हुये चनों में नमक मिर्च लगा कर) खाना बहुत अच्छा है।

गर्मी में बादाम की ठण्डाई, पेठे (भतुए) की मिठाई और ताज़ा दूध अथवा गाय का आध पाव ताज़ा मट्ठा पीना अच्छा है। अथवा, जाड़े की तरह, भिँगोये चने खाना, गर्मी में भी, और अच्छा है। पुत्रियो ! इन सब चीज़ों के अतिरिक्त सैकड़ों चीज़ें खाने योग्य होती हैं। तुम्हारे घर में जो कुछ हलका पदार्थ सवेरे मिले सो खाओ।

यदि तुम्हारी पाठशाला सवेरे खुलती है, तो रसोई वहाँ से आकर जीमो और यदि मध्याह्न को खुलती हो, तो रसोई खाकर जाओ। केवल जल्दी २ रसोई मुँह के भीतर डालने मात्र से ही सम्बन्ध न रखो, बल्कि उसकी विधि को भी देखो, सीखो, ग़ौर करो। घर में माता, भौजाई, बहिन, ताई, चाची, जो कोई रसोई सम्बन्धी कुछ कार्य्य तुमको सौंपे, उसे सहर्ष पूरा करो, शुद्धता और शीघ्रता के साथ करो। ऐसा करने से एक एक कार्य्य करते करते तुम्हें रसोई बनाना आ जायगा।

दाल, चावल, रोटी इत्यादि देशकाल के अनुसार भोजन करना उचित है। चावल के साथ अरहर की दाल मिल जाने से वैद्यक शास्त्र के अनुसार गुणकारी भोजन बन जाता

है। रोटी के साथ और और दाल खानी चाहिये। भोजन के पदार्थ बदलते रहना उचित है। गरमी में ज़ियादा चावल और जाड़े में अधिक रोटी खानी चाहिये।

भोजन स्थिरता से बैठ कर, प्रसन्न मन से, धीरे धीरे, करना चाहिये। पुत्रियो! तुम जो चीज़ खाना पसन्द करो, घर में बना कर खाओ। बाज़ार की अपवित्र पूरी मिठाई पर कभी मत गिरो। बाज़ार की वस्तुओं के बनाने की विधि आजकल एकदम ख़राब हो गयी है। किसी शुद्धाहारी के खाने योग्य पदार्थ शहर भर में एक दूकानदार भी तैयार नहीं करता। प्रायः कुत्तों के भी चाटे हुए बर्तन रहते हैं, पुराना घी होता है। कई कई रोज़ का साना आटा मैदा पकता है, बिना छाने हुए कीड़ोंदार पानी से बनी हुई, बासी ताज़ी मिली हुई, वस्तुएँ बाज़ार में बिकती हैं। ये चीजें कभी कभी पेट में इस क़दर बैठ जाती हैं कि, मनुष्य बीमार तक हो जाता है। जो बालिका बाज़ार की ही वस्तुएँ ले लेकर खाती है, उसका नाम "चटोर" पड़ जाता है। उसे ससुराल में जाकर तकलीफ़ भोगनी पड़ती है। इस लिये तुम घर का बनाबनाया शुद्ध भोजन किया करो। अशुद्ध वस्तुओं का मोह त्यागो।

भोजन करके आधे घंटे तक आराम करना चाहिये।

दो बजे दोपहर को यदि भूख लगी हो तो, कुछ हलका पदार्थ खाओ और फिर शाम को (गर्मी में ५॥ और जाड़े में ५ बजे तक) भोजन करके छुट्टी ही कर लेना उचित है। रात्रि को खाना अनुचित और धर्मसास्त्र के विरुद्ध है। सर्व धर्मवालों को यह मान्य है। बम्बई में मुक्ति फौज आदि कई संस्थाओं में विद्यार्थी दिन में ही भोजन करते हैं। दिन रहते भोजन करने से पाचनशक्ति भी अच्छी रहती है। अजीर्ण रोग बहुत कम होता है।

पुत्रियो! तुम्हें भी रात होने के पहले खाने से फुर्सत पा लेनी चाहिये। रात को भोजन करने का निषेध सभी धर्मात्मओं ने किया है। बस, भोजन के अनन्तर घूमना, फिरना, टहलना, खेलना और पाठ याद करना चाहिये। छोटी इलायची के दो चार दाने भी मुँह में डाल लेने से चित्त प्रसन्न हो जाता है। मुख-शुद्धि आवश्यक बात है। सौभाग्यवती सुन्दरियों के लिये तो ताम्बूलादि है, लेकिन विद्याभ्यास की अवस्था में लवंग इलायची काफ़ी है।

जहाँ तक हो हलकी चीज़ें खाया करो। अन्न और जल तथा घी, नमक मसाले इत्यादि सभी पदार्थों में स्वच्छता का ध्यान बना रहना चाहिये। कोई सामग्री मलिन होगी, तो सारी ज्यौनार एक दम मटिया-मेट हो जायगी। सिल, लोढ़ा, कलसा, चूल्हा और रसोई बनाने

के सारे सामान अच्छी तरह रोज़ साफ़ होते रहें तो बड़ी अच्छी बात है; शुद्ध मर्यादापूर्वक भोजन मिलने से बुद्धि शुद्ध होती है। मलिन भोजन विष के सदृश प्रभाव डालता है। अशुद्ध भोजन से मानस-रोग बढ़ते हैं। भोजन के समय कुवाच्य अथवा असत्य बोलना हानिकारक है। अधीरता के साथ नहीं बल्कि सन्तोष के साथ भोजन करो।

पाठशाला-गमन
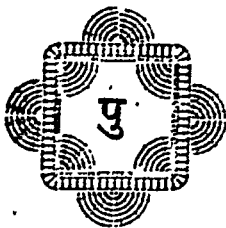
पुत्रियो ! ठीक समय पर पाठशाला जाओ। विद्यादेवी के मन्दिर में देर से कभी मत पहुँचो। जाकर विनय सहित श्रीमती अध्यापिकाजी को नमस्कार करो। उनकी शुभाशिष लेकर यथास्थान बैठ जाओ। कपड़े किताब संभाल कर सभ्यता-पूर्वक बैठो।

पाठशाला में जाकर इधर उधर खेलने कूदने की बात-चीत करने का खयाल बिलकुल छोड़ दो। अपनी सह-पाठिनी बहिनों को भी प्रेम-पूर्वक नित्य ही प्रणाम करो।

मिलाप करना सीखो, अपने पाठ पर ध्यान लगाना प्रत्येक विद्यार्थिनी को उचित है। यदि किसी दिन पाठशाला का काम घर पर किसी ने नहीं किया या कम याद किया हो और वह चाहे तो, पाठशाला में जाकर, मन को स्थिर रख कर, अपना बचा हुआ पाठ वहीं याद कर सकती है। मगर जो वहाँ जाकर हँसी-दिल्लगी और खेल-कूद में लग जाती है, उसका याद किया हुआ पाठ भी विस्मरण हो जाता है। इसलिये पुत्रियो! शाला में जाने पर पाठ पर ही अधिक ध्यान रखो। क़लम और पेनसिल मुँह में मत लगाओ। कापी किताबों पर बेकार बातें लिख कर उन्हें गन्दी रद्दी मत बनादो। हाथ में तमाम स्याही न लपेटो। फुटकर काम के लिये काग़ज़ अलग रखो, कापी में से मत फाड़ा करो। अपनी पुस्तक, कापी, क़लम, पेन्सिल बहुत अच्छी रीति से रखो। किताबों पर चिकनी जिल्द और साफ़ काग़ज़ लगा कर अपना अपना नाम पता लिख दो, जिस में एक से दूसरे की मिले नहीं।

कभी किसी दूसरी बालिका की चीज़ पर नीयत मत बिगाड़ो। यदि कोई चीज़ लेने की जरूरत पड़े, तो लेकर काम हो जाने के बाद तुरत, उसको उस की मालिकिनी को धन्यवाद के साथ लौटा दो।

जब किसी ने कभी तुम पर कोई कृपा की हो तो उस

को मीठे वचनों से अवश्य धन्यवाद दो, इससे तुम्हारी गुण-ज्ञता और कृतज्ञता प्रकट होगी; और उपकारी का भी जी चाहेगा कि, वह तुम्हारी सहायता सदैव किया करे।

सरस्वतीभवन के सामान की भी रक्षा अपने ही सामान की तरह करो। दावात इतनी भर कर मत ले जाया करो कि, स्याही गिर गिर कर विद्यालय की दीवार अथवा बेञ्च गन्दी हो जायँ। बैठने की जगह पर काग़ज़ फाड़ फाड़ कर मत फेंका करो। शाला की बेञ्च, कुर्सी, चौकी, फर्श आदि किसी चीज़ को तोड़ फोड़ करने या मैला करने के लिये हाथ-पैर मत चलाओ। रजिस्टर (वहीखाता) आदि कोई सामान अध्यापिका जी भूल से छोड़ दें, तो उनको संभाल कर उठा लो, और सुरक्षित रख कर उसे दूसरे दिन उनको सौंप दो।

जो विद्यार्थिनी अपनी पाठशाला और उसके कार्य्य-कर्त्ताओं से सहानुभूति रखती है, उसको बहुत लाभ होता है। उसका यशगान होता है। सभी लोग उसकी बड़ी बड़ाई करते हैं।

तुम्हारी पूज्या अध्यापिका जो आज्ञा दें उसे निस्संकोच भाव से शिरोधार्य्य करो। सहपाठिनी भगिनियों के साथ परस्पर प्रेम-भाव रखो। शाला से लौटने पर किसी से झगड़ो मत। घर आने की बेर सब से मिल

जुल कर, हँस कर, गले लग कर क्षमा-प्रार्थना कर बहिनों से विदा माँगो। नम्रता और प्रीति को अपनी सहेली बनाओ।

प्रेम-वर्णन ।

पुत्रियो! क्या तुम यह जानती हो, "प्रेम कैसा उत्तम पदार्थ है"? "प्रेम से बढ़ कर कोई पदार्थ इस भूमण्डल पर नहीं है"" !!! प्रेम ही से योगी मुक्ति के सम्मुख हो जाते हैं। प्रेम ही से माता-पिता पुत्र-पुत्रियों का लालन-पालन करने में अपना सर्वस्व दे देते हैं। प्रेम ही पराये को भी अपना प्यारा मित्र बना देता है। जिसका चाल-चलन अच्छा हो, रहन-सहन सरल हो, बोल-चाल गंभीर हो, बुद्धि-विचार निर्मल हो, शील-स्वभाव सराहनीय हो, रंग-ढंग सच्चा हो, रूप-रेखा शान्तिमयी हो, उसी से प्रेम करो।

पुत्रियो! तुमको प्रेम की शिक्षा पाठशाला से अच्छी तरह मिल सकती है। तुम्हारे घर में तो इने गिने मनुष्य

होंगे और उनसे तुम हिलमिल कर भी रहती होगी, मगर पाठशाला में सैकड़ों सहपाठिनी कन्याएँ तुम्हें दिखाई देती हैं। इन सबको अपनी प्यारी बहन समझो। आपस में एक दूसरे की सहायता करो। एक दूसरे को पढ़ाने लिखाने में अपनी सामर्थ्य भर पूरी मदद करो। कभी पर-स्पर द्वेषभाव मत रखो। जिस कन्या ने पाठशाला में हिलमिल कर रहना सीख लिया है, वह सदा अपने कुटु-म्बियो में भी शान्ति से रहेगी। और जिस का नाम शाला में ही निकल जाता है, उसका निर्वाह घर पर भी मुश्किल ही से होता है। सब कुटुम्बियों के मन में यही बैठा रहता है कि यह लड़की बड़ी लड़ाकिन और कर्कशा है। प्यारी पुत्रियो ! तुम ऐसा नाम कभी मत धराओ। सब की प्रेमपात्री बनी रहो। अपने मन को साफ रखो, सब का भला चाहो, जो दूसरे का भला चाहता है उसका आप से आप भला होता है। वह जगत् का प्यारा, जीव मात्र का दुलारा होता है। प्यारी बहनो ! तुम अपना जीवन परोपकारी बनाना पाठशाला से ही आरम्भ करदो। सब की प्यारी बनो। सबसे गुण सीखो। किसी में कुछ बुराइयाँ हों तोभी उनकी तरफ़ मत देखो। सिर्फ़ गुणों को ही ग्रहण करो। गुणों को ही पूजो, घोखो, याद करो। प्रेम की पाटी चित्त देकर पढ़ो। जैसे नमक

विना वहुत से व्यंजन भी नीरस हो जाते हैं उसी तरह प्रेम विना सारे गुण कौड़ी के तीन हैं। प्रेम पारस पत्थर हैं, इसमें लोहा सरीखे ईर्षा-द्वेषभाव भी स्पर्श करा दिये जायँ तो कञ्चन के समान चमकीले वन जायँ। वालिकाओं को विद्या और अच्छे अच्छे उपदेशों से भरी पुस्तकों से 'प्रेम रखना चाहिये। सयानी लड़कियों को विवाह हो जाने पर अपने एक मात्र पतिदेव की प्रेमोपासना करनी चाहिये। सौभाग्यवती वधू-पुत्रियों को केवल अपने प्यारे पति को ही सर्वस्व समझ कर प्रेम करना सुखदायक है। स्त्री के लिए उसका स्वामी ही सर्वोपरि प्रेम-पात्र है।

वड़े लोगों ने प्रेम की गति इस भांति वर्णन की है—वाल्यावस्था में माता-पिता पर अधिक प्रेम करना चाहिये अध्यन-काल में माता-पिता तथा गुरु-सेवा में अधिक प्रेम करना उचित है, पश्चात् युवावस्था में पतिदेव के चरणों में रत होकर तत्संवन्धि सव से प्रेम-भाव करना चाहिये और वुढ़ापे में सव से मैत्री रखते हुए अधिक लवलीनता परमात्मस्वरूप में रखनी चाहिये—गुरुजनों की आज्ञा का पालन और उनकी सेवा करना ही प्रेम है—छोटों को शिक्षा देना और उनके दुख में दुखी और सुख में सुखी होना ही प्रेम है।

पाठ-स्मरण।
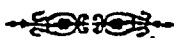
बुद्धि कुशाग्र-भाग सी उसकी शिक्षा पाने में पैठी.
पाठ याद कर लेती थी वह अनायास बैठी बैठी।
देव-देवियों के चरित्र जब प्रेम सहित वह गाती थी॥
तब मालिनी नदी भी मानो क्षणभर को थम जाती थी।

* * * * *

हंस और मीनों से उसने जल में तरना सीखा था,
शीतल और सुगन्ध पवन से मन्द विचरना सीखा था।
होम-शिखा से सद्भावों का जग में भरना सीखा था,
आश्रम के उन्नत विटपों से परहित करना सीखा था॥

—शकुन्तला।

पुत्रियो! तुम जानती हीं हो कि, विना याद किये या घोखे हुए पाठ नहीं स्मरण होता। पाठ याद करना भी भांति भांति का है। कोई लड़की दिन भर याद करती रहती है, तोभी परीक्षा में पास नहीं होती। कोई कम परिश्रम करने पर भी, उत्तीर्ण हो जाती है। इसका कारण यही है कि, जो वालिका पूर्णरूप से

ध्यान देकर गुरु की वात सुनती है, और मन देकर पाठ याद करती है, वह तो सफल हो जाती है, और जो सुनने, समझने और घोखने में ध्यान नहीं देती वह विफल हो जाती है। प्रातःकाल, नित्यकर्म के वाद, पाठ स्मरण करने का सव से अच्छा समय है। दिन निकलने की वेला सूर्य्योदय के पहले तक भी पाठ स्मरण का सर्वोत्तम समय माना जाता है। इस समय दशों दिशाओं में शांति छाई रहती है—चारो ओर एकान्त और मन शान्त रहता है। ऐसे समय में कठिन से कठिन पाठ भी हृदयंगम हो जाता है।

पाठशाला में जव पाठ देने और सुनने का समय आये तव खूव सावधान और प्रसन्नचित्त रहना चाहिये। जो कुछ अध्यापिकाजी समझाएँ उसे खूव ध्यान से एकाग्र मन कर समझ लेना चाहिये। अगर एक वार का कहा समझ में न आये तो तुम्हे उचित है कि उनसे विनय पूर्वक फिर पूछ लो। जव तक वात पूरी तरह से समझ में नहीं आ जाय, तव तक समझ में न आनेवाले स्थलों को खोज खोज कर, अध्यापिकाजी से प्रश्न करो। वेतुके प्रश्नो से पढ़ानेवाले का जी दुःखी हो जाता है, किन्तु ठीक ठीक प्रश्नों से और समझ की वात पूछने से तुम्हारी शिक्षिका कभी नाराज़ नहीं होंगी, वल्कि और भी खुश

होकर, तुम्हारे प्रश्नों के ठीक ठीक उत्तर देकर, तुम्हारे मन में पूरी तरह बैठा देंगी। जब तुम पाठ को समझ जाओ तो प्रश्न करना बन्द कर दो, और जो कुछ शिक्षिकाजी कहती जायँ, सुनती जाओ, जो कुछ लिखाएँ उसे अपनी कापी पर नोट कर लो। जो हिसाब आदि करवाएँ उसे एकाग्र मन से एकान्त में कर लो। आपस में एक दूसरी लड़की की कापी को देख लेना बहुत बुरा है। यह चोरी है और कमज़ोर बनानेवाली बात है। बी० ए०, एम० ए० आदि बड़ी बड़ी परीक्षाओं के विद्यार्थी भी इस ताका-झाँकी के लिये परीक्षा-भवन से निकाल दिये जाते हैं, और हजारो लड़कों के आगे अपमानित होते हैं। उनके एक दिन के ऐसे बुरे बर्ताव से साल भर का परिश्रम मिट्टी में मिल जाता है। तुम कभी इस आदत को मत सीखो। सदा सब काम पवित्र और सच्चे हृदय से करो।

पढ़ने के कई विषय हैं। जिन में कितने ऐसे हैं, जो कण्ठस्थ करने चाहिये। कितने ऐसे हैं, जो विचारने चाहिये। और कई ऐसे हैं, जिन्हें हाथ से लिखना चाहिये। सब विषयों में नियमानुसार, समझ कर, याद करने ही से तुम पण्डिता होओगी।

हिसाब—यह ऐसी चीज़ है, जिसमें एकान्त विचार की ज्यादा ज़रूरत है। जो हिसाब तुमको शिक्षिकाजी ने सम-

झाया है और जितने "दृष्टान्त" तक तुम्हारी परीक्षा में प्रश्न आने सम्भव हों, उनको एकान्त में हल कर लो और उन्हें बराबर अभ्यास करती रहो। जो विद्यार्थिनी शाला से घर आकर हिसाब नहीं करती, अकेली पन्ने उलटने, पलटने उत्तर देखने आदि बातों से घबरा जाती है, और केवल हिसाबके क़ायदे को समझ कर ही सन्तुष्ट रहती है वह परीक्षा में फेल हो जाती है। एकान्त में खूब अभ्यास किये बिना, हिसाब के पेंचीदे सवालों को करने की योग्यता, नहीं प्राप्त होती।

व्याकरण—इसके नियमों को कण्ठ करना ही उचित है। संस्कृत-व्याकरण के नियम तो अवश्य ही कण्ठ करने होते हैं। कण्ठस्थ करने की चीज़ें, खूब अच्छी तरह समझ लेने पर, जल्दी याद हो जाती हैं; बिना समझे चौगुना परिश्रम लेती हैं। इसलिये सब बातों को प्रथम समझ लो। व्याकरण के सिवा, जो जो उपदेश की बातें हैं, उनको भी कण्ठस्थ करना उचित है, चाहें वह व्याकरण-सम्बन्धी हों, चाहे नीति या शिक्षा सम्बन्धी हों।

लिखना—पहले शिक्षिकाजी के सामने ही अधिकतर लिखा करो। वह जो जो ह्रस्व, दीर्घ की ग़लतियाँ बताएँ उन्हें खूब समझ लो, पुनः शुद्ध लिख कर दिखाओ। वाक्य रचना में जो जो ग़लतियाँ हों, उनको रोज़ सुधारो। अपनी

ग़लतियों को याद रखो कि कितनी कल हुई कितनी आज हुई। ऐसी चेष्टा करो कि, जो ग़लती पहले दिन हुई थी, वह फिर न हो। ऐसा करते करते थोड़े दिनों में शुद्ध लिखना पढ़ना आ जायगा। पुत्रियो! जब तुम को लिखने पढ़ने में शुद्धाशुद्धि का ज्ञान हो जाय, तब एकान्त में बैठकर लेख लिखने का अभ्यास करो—किसी एक विषय पर अपना विचार लिखो। जैसे तुम ने "असत्य" यह विषय लिया। इस पर तुम सोच कर यह लिखो कि (१) झूठ बोलना बुरा है या अच्छा? (२) मनुष्य को झूठ बोलना चाहिये या नहीं? जैसा तुम्हारा ख्याल हो, सब लिख डालो। और लिख लिख कर, शिक्षिकाजी को दिखाओ वे तुम्हारी ग़लतियों को सुधार देंगी। इस तरह तुमको लेख लिखना भी आजायगा। लिखने में जो बालिका होशियार होगी, उसको अपने आप ठीक ठीक पढ़ना आ-जायगा।

अक्षरसुधार—इस विषय पर भी अवश्य ध्यान देना चाहिये। चाहे जितनी जल्दी लिखो, मगर अक्षरों को मत बिगाड़ो। सुन्दर वाक्य भी चील, बिलाव के ऐसे अक्षरों में लिखा हुआ अच्छा नहीं मालूम पड़ता। पहले पहल जैसे जैसे अक्षर बनाये जाते हैं वैसे ही लिखने की आदत पड़ जाती है। इसलिये तुम सावधानी से अक्षर बनाओ, जिसमें

लिखी बात भद्दी न होने पाए। संस्कृत, हिन्दी तथा उर्दू लिखनेवाली बालिका को अपने हाथ से क़लम बनानी चाहिये। जो अच्छी क़लम नहीं बना सकती, वह हर समय अच्छा नहीं लिख सकेगी।

जो बालिका पुष्ट और स्पष्ट अक्षर लिखने का अभ्यास करती है, वह निस्सन्देह सब किसी को सहज ही प्रसन्न कर सकती है। लोग कहा करते हैं कि, जिसका दिल साफ़ है, जिसके मन में प्रेम और शान्ति है, जिसके हृदय में छल या दुष्टता नहीं है, वही सुन्दर सुन्दर साफ़ अक्षर लिख सकता है। लड़कियों! तुम चेष्टा करो—सुपुष्ट अक्षर लिखने की—सीधी पंक्ति रचने की।

उल्था—जो कन्या अन्य भाषा जैसे संस्कृत, अंग्रेज़ी आदि का अभ्यास करती है, उसको अपनी मातृ-भाषा से उन भाषाओं के वाक्य तर्जुमा करके लिखने चाहिये और अपनी भाषा के वाक्यों को उन भाषाओं में अनुवाद करके लिखना चाहिये। इस तरह उल्था करने से दूसरी भाषा बहुत जल्द आ जाती है। जो बालिका उल्था नहीं करती उसको दूसरी भाषा के गूढ़ मतलब कभी लिखने नहीं आते। अनुवाद करने के समय शब्द-कोष व्यवहार में लाओ।

चिट्ठी-पत्री लिखना—अपनी सखियों के पास और माता-पिता के पास पत्र लिखने में कभी आलस्य नहीं

करना चाहिये। किसी का पत्र पाते ही उसका यथार्थ उत्तर लिख दो। माता-पिता को जो जो वाक्य लिखो उन सब को विनय के शब्दों में लिखो। माता पिता तुमको जो अच्छी शिक्षा लिखें उन्हें याद कर लो। ऐसा करने से आपस में लिखापढ़ी का ज्ञान हो जायगा।

अपनी पुरानी लिखी कापियों को कभी मत फेंको। उन्हें बड़े यत्न से रखो, शायद फिर कभी उन में से कुछ देखना पड़े। लिखते समय अपना मन स्थिर रखो। यदि कोई काम चिन्ता का आगे हो, उसको पहले कर लो, तब लिखने बैठो। घबरा कर लिखने में कुछ का कुछ लिखा जाता है। चतुर भी मूर्ख बन जाता है। जो कुछ लिखो, सोच कर लिखो, क्योंकि, "लिखना अपने मन को कागज़ पर धर देना है।" तुम्हारे मन, बुद्धि, योग्यता, भाव, विचार सब का पता तुम्हारे लिखे हुए से लग जायगा।

चुगली निन्दा की बातों पर लिखापढ़ी करने का अभ्यास कभी मत डालो—यह विवाह होने पर बहुत दुःख देगा। झगड़े की बातों को हृदय में स्थान न देना चाहिये, कागज़ पर लिखना एक 'व्यर्थ' सरस्वतीमाता का अपमान करना है।

ऐसा करना असभ्यता भी है। बहुत सी कन्याएँ अपने ससुराल का दुःख पितृ-गृह (पीहर) में लिखकर भेजा करती

हैं, किन्तु तुम भूल कर भी ऐसी खोटी चूक न करना। यह हँसी करानेवाली रीति है। तुम्हारी ससुरालही तुम्हारा असली घर है। तुम उसे स्वर्ग से भी अच्छा मानो, क्योंकि तुम्हारे पतिदेव का वास-स्थान है--तुम्हारे जीवन को आनंद और सौभाग्य से भरनेवाली जगह है।

पढ़ना—किसी भाषा की बहुतसी अच्छी अच्छी किताबें पढ़ते रहने से उसका पूरा ज्ञान हो जाता है। पुत्रियो! तुम्हारी जितनी साहित्य इतिहास-सम्बन्धी उपयोगी किताबें हैं, उनको मन लगाकर बार बार पढ़ो, और उनका भावार्थ याद रखो। अपने पाठ में जितने नवीन शब्द आते जायँ उनको खूब याद कर लो। जब सब शब्दों के अर्थ ज्ञात हो जायँगे, तब कठिन से कठिन पुस्तकों की भाषा का अर्थ; कह और लिख सकोगी। यही अभ्यास तुम्हारी परीक्षा में काम आएगा। जो बालिका बिना अर्थ समझे और बिना ध्यान दिये पढ़ती है, उसका पढ़ना क्या है, तोता-मैना की कहानी है। वह कभी पास नहीं होगी। जो कुछ भी पढ़ना हो, एकान्त में एकाग्र चित्त से बैठ कर हृदयंगम करो। खाली रटने से सिर-दर्द होने का भारी भय रहता है—साथ ही साथ समझते जाना, तर्क और बुद्धि लड़ाते जाना, अनूठे भावों को सञ्चय करते जाना, तब पाठ शीघ्र अभ्यस्त हो सकेगा। * * * *

दस्तकारी।
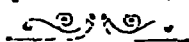
सीना, पिरोना क़सीदे काढ़ना, ड्राइङ्ग (चित्र उरेहना) वेल-बूटे वनाना यह सव काम तुम्हारे कोमल हाथ की सफ़ाई पर निर्भर हैं। अगर खाली समझे ही समझे रहोगी तो कुछ नहीं आएगा। इन कामों के लिये अभ्यास की ज़रूरत है। हाथ पर हाथ धरे वैठी रहोगी तो कोई काम नहीं सरेगा।

रोज़ अपने हाथ को इन कामों में, थोड़ी थोड़ी देर तक, लगाती रहो। वस, सव कुछ तुम्हें आ जायगा। पुत्रियो! ये काम तुम्हारे लिये वहुत ज़रूरी हैं। जो वालिका सीना, पिरोना, अच्छी तरह सीखती है, वह वड़ी होकर अपनी गृहस्थी के काम में वहुत फ़ायदा उठाती है और सुघड़ कहलाती है, इसका उलटा करने से मूर्खा और फूहड़ कहलाती है।

तुम अपने कपड़े—कुर्त्ती, लहंगा, रुमाल, चादर, सभी चीज़ें जहाँ तक हो सके, अपने हाथ से सीने की कोशिश करो। सव चीज़ों की ठीक ठीक "काट-छाँट" सीखो। वड़े वड़े काग़ज़ों पर, सव तरह की 'काट' पेन्सिल से काढ़
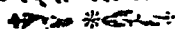
काढ़ कर, टाँग दो, जिस में कभी न भूलो और दूसरों को भी फ़ायदा हो ।

पुत्रियो ! तुम को जो काट-छाँट सिखायी जाय उसे काग़ज़ पर काढ़ लेना चाहिये । कपड़े की काट और सिलाई के अतिरिक्त मिट्टी के खिलौने भी, सीख लेने पर, सरलता से बना लिये जा सकते हैं। उजली पुती हुई दीवार पर बारीक क़लम से अभ्यास करने पर रंगीन तस्वीरें—रंगबिरंग से—बनाई जा सकती हैं । सब तरह के ऐसे कामों में तुम अपने हाथ को साधो । जब तुम्हारा हाथ खूब बैठ जायगा, तो सम्भव है कि, तुम दस बीस पुत्रियों का, ऐसे शिक्षा-दान से, उपकार कर सकोगी । रंगीन काग़ज़ काट कर तथा कपड़े के फूल का गुलदस्ता बनाना सीखना चाहिये और कपड़े के चुनने में भी बड़ी बारीकी है—यह भी सीखनी चाहिये । छोटे छोटे बच्चों को गेंदा आदि खेल की चीज़ें बना कर दो । जब तुम विवाहिता हो जाओ तब पति को प्रसन्न करने के लिये सुन्दर रूमाल बना कर उन्हें 'प्रेम की भेंट' देना तथा और भी जो उनका आवश्यक सीना पिरोना हो उसे करना ।

देहली में सिङ्गर की मशीन बेचनेवाली कम्पनी के यहाँ, बड़े बड़े काग़ज़ों पर काट काढ़े हुए टँगे हैं । वहाँ की एक मेम कहती थी कि, यह सब हमने हज़ारों रुपये खर्च कर, विलायत आदि के दर्ज़ियों से सीखे और कटवाये हैं।

आज्ञा-पालन ।

पाठिका का हुक्म मानना हर एक बालिका का परम धर्म्म है। वह जो करने को कहें उसे करो। जहाँ बैठने को कहें वहाँ बैठो। यदि कोई कटु बात भी कहें, या कुछ दण्ड भी दें, तो उसे भी शान्तभाव से सह लो, कभी उत्तर न दो, क्योंकि वे जो कुछ कहेंगी तुम्हारे भले ही के लिये कहेंगी। तुम सिर्फ़ यही विचार करो कि, यह दण्ड हम को किस काम के लिये मिला है। जिस अपराध के लिये दण्ड मिला हो, उसको भली भांति समझ कर, उसे एक दम छोड़ देना ही उचित है। क्रोध में आकर, गुरु के हुक्म को उठाना, सुशील लड़की का काम नहीं है। पुत्रियो! तुम को सारी शिक्षा पढ़ने से ही प्राप्त कर लेनी उचित है। तुम गुरु का हुक्म बजाना सीखोगी, तो अपने कुटुम्बियों में सुख पाओगी। जो मनुष्य हुक्म मानना सीखता है, वह दूसरों पर भी, हुकूमत चला सकता है। और, जो स्वयं घमण्डी है, वह दूसरे किसी को भी वश में नहीं कर सकता।

तुम सदैव बड़ों का कहना मानो, तभी तुम्हारे नौकर-चाकर भी तुम्हारा कहना मानेंगे।

यदि अध्यापिकाजी तुम से कोई काम लें तो उस सेवा को तुम सहर्ष करो। किसी क्लास को पढ़ाने का काम सौंपें, या तुम्हें किसी क्लास की रक्षिका नियत कर दें, या पाठशाला के और किसी काम में तुम से मदद लेना चाहें, तो तन-मन लगाकर उन की आज्ञा का पालन करो। अपने काम को ठीक ठीक सम्हालो, कभी आनाकानी मत करो।

जो विद्यार्थिनी गुरु को प्रसन्न रखती है, उसको विद्या बहुत जल्दी आती है। और, जो अप्रसन्न रखती है, वह नुक़सान उठाती और पछताती है। जैसे कहा है कि:—

मात, पिता, गुरु, स्वामि, सिख, जो न धरहिं सिर मानि।
ते पछताइ अघाय उर, अवशि होइ हित-हानि॥

प्यारी पुत्रियो! अध्यापिका तो तुम्हारे लिये साक्षात् विद्या-माता है—उसकी टहल न करोगी, उसका कहना न मानोगी, तो तुम सर्वगुणाकारी नहीं हो सकोगी। केवल गुरु के हार्दिक प्रेमाशीर्वाद से विद्या-विवेक का विकाश हो सकता है। पुनः माता-पिता तो तुम्हारे घर के देवता स्वरूप हैं; उनका आदेश मानना, उनकी आज्ञा किसी दशा में भी उल्लङ्घन न करना, उनके मनोऽनुकूल चलना तुम्हारा

सब से प्रधान कार्य्य है। माता-पिता के प्रतिकूल काम करना मानवधर्म से विपरीत काम करना है। शिक्षिकाजी तुम्हें जो जो अच्छी शिक्षा दें, उन्हें अपनी माताजी को भी, अवकाश का अवसर पाकर, सुना दिया करो। जब तुम पतिवाली हो, जब ससुराल में जाओ तब अपने सास-ससुर का सम्मान किया करना; क्योंकि, वे तुम्हारे पूज्यदेव के भी मान्य हैं।

अपने पति की अनुमति के अनुसार ही रहना। श्रद्धा-पूर्वक उनका कहना करना। उनके मुख से वचन निकलने में विलम्ब हो तो हो; किन्तु तुम्हारा निर्वाह इसी में है कि, उसके करने में तुम तनिक भी देर न करना। पति को अपना जीवनसर्वस्व समझ कर उनका सत्कार करना, उनसे स्नेह रख कर उनके कहने से बाहर मत जाना और अपने अगाध प्रेम एवं आज्ञा-पालन से उनको सन्तुष्ट करना।

छुट्टी——जब तुमको शिक्षिकाजी छुट्टी की आज्ञा सुनादें तब शान्ति के साथ, अपनी सब पुस्तकों को लेकर, सावधानी से, घर को रवाना होना चाहिए। मार्ग में हल्ला मचाना, ऊंची दृष्टि करके इधर उधर ताकना, और दौड़ कर चलना, टेढ़ेमेढ़े कपड़े पहने ज्यों त्यों भागना, अच्छी लड़की का काम नहीं है। जो कन्या रास्ते में बुरी चाल

से चलती है, उसको सब लोग "उद्धत" कहते हैं। माता-पिता आदि निन्दा सुन कर-शाला जाने से रोक देते हैं; फिर जन्म भर मूर्खा रहना पड़ा रह जाता है। इसलिये सदा नीची दृष्टी कर, अपनी पाठ्य पुस्तकों को लिये हुए घर आना चाहिये। घर आकर, प्रसन्नचित से, माता-पिता और सब बड़े लगों को प्रणाम करना चाहिये।

अपने छोटे भाई बहिनों से खूब प्यार के साथ बोलो। शाला की दो एक चटकीली बातें कह कर, उनके जी को खुश कर दो। उनके सामने हर समय अपनी शाला की बड़ाई ही करो। यदि कोई कष्ट भी तुमने उठाया हो, तो उसका व्याख्यान कर, किसी को दुःखी मत बनाओ। यदि कोई आवश्यक कष्ट की बात कहनी हो, तो एकान्त में, शान्ति के साथ, कहो। आते ही उनका चित्त दुःखी मत करो और मत स्वयँ रंज में पड़ो। थोड़ी देर तक अपने शरीर और मन को विश्राम देकर घर के माता आदि व्यक्ति, जो आज्ञा करें; उसका प्रसन्न मन से पालन करो।

व्यायाम (कसरत)

दिन भर बैठे बैठे पढ़ने और सीने-पिरोने से जो सुस्ती छा जाती है, उसको दूर करने के लिये, कसरत करना बहुत ज़रूरी है। कसरत दो तरह से हो सकती है। पहली घर का काम-काज करने से; और, दूसरी गेंद मुगदर आदि के खेल कूद करने से। हमारी हिन्दुस्तानी पुत्रियों के लिये पहली ही कसरत अधिक गुणकारी है। यह अपने कुल में बहुत दिनों से होती आयी है। इस लिये ज्यादा इसी को करना उचित है। इसमें "एक पन्थ दो काज" है। घर में माता-पिता का काम भी चलता रहेगा, और परिश्रम करने से शरीर भी ठीक रहेगा। परन्तु जो कन्या न तो घर का काम करके परिश्रम करती है; और न खेल टहल कर ही परिश्रम करती है, वह सदैव रोगिणी बनी रह कर, अपनी ज़िन्दगी दुःख से बिताती है। अमीर-घरों की औरतें अधिक बीमार इसलिये पड़ती हैं कि, वे दिनरात बैठे बैठे अपने शरीर के खून को ठंडा बनाती रहती हैं।

पुत्रियो! हर समय, तुम्हारे शरीर में खून चलता रहता है। यह जो कलेजे पर हाथ रखने से धड़कन मालूम होती है, वह चलते हुए खून की ही आवाज़ है। जब यह आवाज़ बन्द हो जाती है, तब शरीर मृतक गिना जाता है, अर्थात् खून की गति रुकने से ही प्राण निकल जाते हैं।

हम को अपने शरीर की इस तरह रक्षा करनी उचित है, जिस में रक्त का प्रवाह ठीक रहे। यह ठीक तभी रह सकता है जब कि, सामर्थ्य भर परिश्रम किया जाय और चित्त प्रसन्न बना रहे। तुम चार छ: घण्टे बैठकर पढ़ना, सीना आदि करती हो, तो दो एक घंण्टे ऐसा काम भी करो जिसमें शरीर के सब भाग हिलें, और परिश्रम करते रहें।

घर का काम—कूटना, पीसना, छानना, रसोई करना ये सब व्यायाम ही हैं। पुत्रियो! यदि तुम्हारी माता; इन कामों को अपने हाथ से करती है, तो उनके साथ साथ तुम भी ज़रूर करो। बार बार उठने बैठनेवाले काम में भाग लो, बस ख़ासा व्यायाम हो जायगा। यदि घर में नौकर-चाकर इन कामों को करते हैं तोभी चुप मत बैठो। इन कामों की देखभाल, सम्हाल में उठा-बैठी करती रहो, जिसमें आलस्य तुम्हारे पास न आवे। और नहीं तो कपड़े की मेशीन ही चलाया करो, इस में भी हाथ

पैर चलाना पड़ता है। यदि काम करनेवाले घर में बहुत हैं और तुमको काम करने का अवसर न आता हो, तो खेल और टहल कर परिश्रम करो। बुनने के काम—दस्ताना, मोज़ा आदि टहलते टहलते ही बुनना अच्छा है। इससे तुम्हारी दैहिक शक्ति नहीं बिगड़ेगी। यदि तुम्हारी माता और शिक्षिकाजी पसन्द करें और साथ जायँ, तो शाम को टहलने के लिये बाहर उप-वन में जाओ। बाहर की वायु भी स्वच्छ होती है। यह श्वासोच्छ्वास के द्वारा भीतर जाकर अन्दर की गन्दी हवा को निकाल कर बाहर करेगी और तुम्हें प्रसन्न तथा हृष्टपुष्ट बना देगी। टलहने से शरीर नीरोग और सुन्दर हो जाता है, जाड़े मुटाई और दुबलापना दोनो को टहलने से लाभ होता है, नित्य टहलनेवाले मनुष्य सुडौल होते हैं।

यदि तुम्हारी पाठशाला में धार्म्मिक पदों के साथ कुछ कवायद (ड्रिल) सिखाई जाती हो तो उसको प्रेम से सीखो। उस में परिश्रम करो। हर हालत में परिश्रम करना तुम्हारे लिये गुणकारी है। इस का नाम व्यायाम है। इसी व्यायाम की ग़रज़ से आज कल खाते पीते लोग तरह तरह के खेल—टेनिस, फुटबॉल आदि—खेलते हैं, कुश्तियाँ लड़ते हैं! इसी कसरत के प्रभाव से दिन भर लकड़ी ढोनेवाला बेचारा मज़दूर सूखी रोटियों

को पचा कर हृष्टपुष्ट रहता है और रात्रि को चैन से सुख की नींद सोता है। तुम्हारा व्यायाम बस यही है कि, अपने पास आलस को फटकने मत दो। फुर्तीली बनी रहो। कार्य्यतत्परता में चित्त दो, शिथिलता छोड़ो।

उपर्युक्त दोनो तरह के व्यायामों में खेल कूद का व्यायाम केवल शरीर और मन को प्रसन्न करता है और काम-काज में परिश्रम करना सब तरह से अच्छा है। विद्या पढ़ना मानसिक व्यायाम है। सीने, बुनने, पिरोने और चिट्ठी लिखने, इत्यादि हाथ के करने योग्य व्यायाम कार्य्य हैं। बाग़ में सरोवर तट पर नदी-तीर पर और खुले मैदान में, खुली छत पर टहलना भी बड़ा लाभदायक व्यायाम है। देखोः—

"जो तुम को हो सुख को चाह।
तो न करो कुछ भी परवाह॥
एक परिश्रम करना सीखो।
उस के पथ पर चलना सीखो॥१॥
निर्द्धन को राजा कर देता।
मूरख को पण्डित कर देता॥
सद्यः गुण दिखलाने वाला।
है श्रम का यह सुगुण निराला॥२॥
आलस है सब दुख का द्वारा।

चिन्ता शोक बढ़ाने हारा ॥
जो नर इसको पास बुलाते ।
वे सदैव संकट हैं पाते ॥३॥
हे ! हे ! ! सर्व गुणों के स्वामी ।
श्रम देवता ! नमामि नमामि ॥
करुणा भारत पर कछु कीजै ।
मीठे फल इस को भी दीजै" ॥४॥

गुनना (मनन करना)

प्रिय पुत्रियो ! तुम ने सुना होगा कि पढ़ना और गुनना दो अलग अलग चीज़ें हैं । जो बालिका पढ़ तो लेती है, पर पढ़ी हुई चीज़ को काम में नहीं लाती, उसको सब लोग कहते हैं कि "अमुक बालिका पढ़ी-लिखी तो है, पर गुनी (समझदार) नहीं ।" इससे यह प्रकट होता है कि, 'पढ़ कर गुनना बहुत जरूरी है ।' गुनना दो प्रकार का है । पहला विद्या पढ़ने के साथ साथ, और दूसरा विद्या-सम्पन्न हो जाने के बाद ।

१—पुत्रियो! शाला में जो जो उपयोगी बातें तुम को बतायी जायँ, उन सबों को घर आकर पिता माता से कह कर उनका मन प्रसन्न करो। अगर तुमने उलटा पुलटा समझ लिया होगा, तो वे लोग तुमको ठीक ठीक बतला देंगे।

आपस में एक दूसरी से प्रश्न किया करो। पढ़ी लिखी बातों पर दलील करो "हमको अधिक याद है कि तुमको" ?—इस बात के घमण्ड में मत फूलो, वरन् वाद-विवाद करके उस बात को आपस में यहाँ तक निर्णय कर लो, जैसा कि तुम्हारी शिक्षिकाजी ने बतलाया है।

जिस तरह पहल काटने से हीरे में चमक आ जाती है, उसी तरह, परस्पर दलील करने से, विद्या में चमक आ जाती है। मुँह से शब्द निकालने की शक्ति बढ़ती है। हमने देखा है कि, कोई कोई कन्या जितनी बातें जानती है, उनको साफ़ साफ़ कह नहीं सकती। इसी कारण, समय पड़ने पर फेल हो जाती है; और हाथ मल मल कर पछताती है।

तुम अपने क्लास में धनवती लड़की को बड़ी मत समझो। उमरवाली भी बड़ी नहीं है। बड़ी वही है, जो विद्या और गुणों में तुमसे बढ़ी चढ़ी हो—विद्यावती और धर्म्मचारिणी हो—सुशील तथा सत्यवादिनी हो।

पाकविधि की पुस्तकों को पढ़ने में, जिस जिस वस्तु

के बनाने की विधि तुमको बताई जायँ, उसे पढ़ कर ही मत छोड़ दो। घर में अपने हाथ से बनाकर तैयार करो और माता पिता को खिलाओ। कपड़े सीना, बुनना आदि जो सीखती हो, वह भी काम में लाओ। अपनी छोटी छोटी बहिनों और प्यारे प्यारे भाइयों को सी-पिरोकर पिन्हाओ।

पुस्तकों में जो धर्मतत्त्व पढ़ो, उन्हें प्रति-दिन स्मरण करो, भूलो मत। जो सदुपदेश तुम रोज़ धर्मपुस्तकों में पढ़ती हो, और स्वाध्याय करती हो, उनको हृदय में याद रखो—उन्हीं के अनुसार चलने का यत्न करो, इन्हीं सब अभ्यासों से तुम पढ़ने के साथ साथ, गुनती भी जाओगी।

२—दूसरा गुनना—पढ़ने के बाद अपना अनुभव बढ़ाना है। जब तुम सानन्द पूर्णरीति से विद्या पढ़ चुको और पाठशाला छोड़ दो, तो इधर उधर से ज्ञान प्राप्त करो। अनेक स्त्री-शिक्षासम्बन्धी पुस्तकें पढ़ो। बड़े बड़े धार्मिक ग्रन्थों में सती साध्वी देवियों की चरितावली पढ़ो-गुनो-समझो-सोचो-विचारो-अनुभव बढ़ाओ-अनुकरण करो।

समाचार-पत्र—दैनिक, साप्ताहिक, मासिक;—सब तरहके समाचारपत्र नित्यप्रति पढ़ने चाहिये। इनसे बहुत कुछ ज्ञान प्राप्त होता है। आजकल मानव हृदय पर समाचार-पत्रों तथा मासिक पुस्तकों का जितना प्रबल प्रभाव पड़ सकता है उतना दूसरे किसी का नहीं। जनता के

विचारों को उन्नत बनाने का एक बड़ा भारी साधन है—समाचार-पत्र । इसलिये उत्तमोत्तम शिक्षाप्रद समाचार-पत्र पढ़ना प्रत्येक पढ़ी लिखी बालिका का कर्त्तव्य है। अखबारों के पढ़ते रहने से लेख लिखने की शक्ति भी बढ़ती है, वाक्य रचना की प्रतिभा बहुत तेजस्विनी होने लगती है, देश की सामयिक दशा जान पड़ती है और अनेक अनुभव की बातों की जानकारी प्राप्त होती है ।

स्थिरता ।

चित्त लगा कर सीखिये, विद्या विविध प्रकार ।
विद्या है इस विश्व में, सुख-सम्पति का द्वार ॥

—'पूजा फूल'

पुत्रियो ! पढ़ते समय स्थिर-चित्त रहना उचित है। पढ़ने से कभी मत घबराओ । जिस विषय को पढ़ो—अच्छी तरह पढ़ डालो—अधूरा काम बड़ा हानिकारक होता है। आधी विद्या ठीक नहीं। समय पर पूरा इल्म ही काम आता है, आधा नहीं ।

तुम्हारे पाठ्य विषय कितने ही कठिन क्यों न हों, घबरा कर हताश मत हो जाओ। धीरे धीरे स्थिर होकर आगे बढ़ती चली जाओ। कभी न कभी अवश्य सारी कठिनाइयाँ तुम्हारे सामने सहज से भी सहज प्रतीत होने लगेंगी—चाहे मार्ग दस कोस का हो या २० कोस का, मगर चलनेवाला तै कर ही देता है। इसी तरह तुम्हारा परिश्रम भी व्यर्थ नहीं जा सकता, अवश्य ही फलीभूत होगा, तुम अवश्य पण्डिता हो जाओगी। धीरज का फल मीठा होता है।

यदि किसी कारण से तुम फ़ेल भी हो जाओ, तो रंज मानकर पढ़ना मत छोड़ो—आगे के लिये फिर कमर बाँधो। मार्ग में टक्कर लगती है, आगे बच कर (सावधानी से) चलने के लिये। इसी तरह समझ लो कि, तुम फ़ेल हुई हो आगे खूब यत्न से पढ़ने के लिये। जो कन्या स्थिर-मति नहीं है चञ्चलता करके शीघ्र ही पढ़ना छोड़ बैठती हैं वह पीछे जन्म भर पछताती रहती है। अतएव, जो काम करो—आगा पीछा विचार कर करो।

विद्यार्थी पर पढ़ते पढ़ते कितने ही कष्ट भी प्रायः आ जाते हैं।

दुनियाँ में दिनों के पीछे रात्रियाँ हैं। सभी बातों का उदय और अस्त होता है। जो बात कल थी वह आज

और तरह का ही रूप धारण कर लेती है। तुम्हारे शिर पर कितने ही झगड़े टण्टे आ पड़ें, पर पढ़ने के मुख्य उद्देश को सपने में भी मत छोड़ो। यदि तुम्हारी स्थिरता बिगड़ जायगी, तुम डावाँडोल हो जाओगी, तो तुम कभी विद्या-लाभ नहीं कर सकोगी; और सारे काम सदा के लिये बिगड़ जायँगे।

बड़े बड़े पण्डितों के जीवन-चरित्रों में लिखा है कि, पढ़ते समय उनको दरिद्रता ने ऐसा आघेरा कि, रात्रि को तेल तक नदारद। जिससे दीपक जला कर पाठ याद करें। पुत्रियो! तुम सोचती होओगी कि, ऐसी दशा में, उन लोगों ने पढ़ना छोड़ दिया होगा, और पेट भरने का काम शुरु किया होगा, परन्तु सो बात नहीं है। उन लोगों ने दिन क्या रात को भी पढ़ना नहीं छोड़ा। किताब ली और सड़क पर, निकल गये जहाँ सरकारी लैम्प राह-गीरों के सुभीते के लिये गड़े रहते हैं, उनके नीचे घूम घूम कर पाठ याद कर लिया और सो गये।

कितने ही पण्डित ऐसे थे, जिन्हें पढ़ने से शीघ्र याद ही नहीं होता था, और घबरा कर पढ़ना छोड़ छोड़ देते थे, परन्तु जब उन्होंने स्थिरता देवी की शरण ली, और स्थिरमन होकर विद्या के पीछे पड़ गये तब महान् विद्वान् हो निकले।

प्यारी पुत्रियो! तुम भी किसी तरह की विपत्ति से मत

घबड़ाओ। शान्त होकर पढ़ने में चित्त लगाये रहो। अवश्य ही विदुषी हो जाओगी।

केवल चिट्ठी-पत्री लिखना सीखने से और थोड़ा बहुत ग़लत-सलत हिसाब करना आजाने से ही विद्या पूरी नहीं हो जाती। विद्या के लिये बहुत समय की आवश्यकता है। यह एक बड़ी भारी तपस्या है, जो दो चार दिनों में कभी समाप्त नहीं हो सकती। यह बहुत परिश्रम, अध्य-वसाय और मनन की ज़रूरत रखती है। जब तक तुम अपनी सारी बाल्य और किशोर अवस्था इस की भेंट न करोगी, तब तक उत्तम फल नहीं पाओगी।

जब तुम अपने में पूरी विद्या भर लोगी, तभी फूलो और फलोगी। यदि तुमने यथार्थ परिश्रम विद्या पढ़ने में कर लिया है, और उसकी आज्ञा सिरोधार्य्य कर, पढ़े लिखे के अनुसार, अपना समय निकालना जान लिया है, तो फिर दूसरी जगह परिश्रम की ज़रूरत नहीं है, यश, धन, गौरव, मान दुनिया की सब अच्छी अच्छी चीज़ें आपसे आप तुम्हारे पास चली आयंगी।

स्थिरता भङ्ग होने के कितने ही कारण होते हैं। परन्तु, सबसे बड़ा कारण चित्त का दूसरी तरफ़ झुकाव है। जिस तरह, पानी से भरे हुए घड़े में घी डालने से, चारों तरफ़ बिखर जाता है उसी तरह इधर उधर के झगड़े झंझट,

लोभ, चिन्ता, शोक आदि से भरे हुए चित्त में विद्या टिकती ही नहीं। मन एकाग्र करके विद्याभ्यास करना चाहिये। जब तक मन विचलित होता रहेगा विद्या का प्रखर प्रभाव हृदय पर नहीं पड़ेगा—और जब हृदय में—शान्ति—एकाग्रता भरी रहेंगी तो विद्या-वल्लरी खूब ही लहलहायगी।

पुत्रियो! जब तक तुम विद्यार्थिनी की अवस्था में रहो तब तक किसी और झंझट में अपने मन को मत लगाओ विद्यार्थिनी के लिये पाठ पर ध्यान देने से बढ़ कर अच्छी चीज़ दुनिया में और कोई नहीं है। एकान्त स्थान में बैठ कर मन को अपने अधिकार में करने की रीति सीखो। मन को वश में करने का निरन्तर अभ्यास, किसी एक दिन बड़ा मधुर फल देगा।

नहीं हैं ध्यान देने को, सकल संसार के भीतर
सिवा निज पाठ के तुमको, वस्तु विद्यार्थी—जीवन भर॥

समय का आदर।

य पुत्रियो ! जो कन्या "समय" का आदर करना नहीं जानती, वह पढ़ने में बड़ा कष्ट उठाती है। उसके सारे पाठ्य विषय कच्चे रह जाते हैं। रात्रि को वह थक जाती है, पुस्तक हाथ में रहती है, तोभी नींद आजाती है; बस पाठ नहीं याद होता।

जिसने अपना समय खोआ, उसने सब कुछ खोआ। जो कन्या प्रातःकाल देर से सोकर उठती है, व्यर्थ की बातें बना कर गप्पें लड़ाना पसन्द करती है, उसका समय व्यर्थ जाता है, क्योंकि वह समय का आदर नहीं करती।

जो बालिका सखियों के यहाँ बिना काम जाकर गप्पें उड़ाती है, और इसी तरह घर घर घूमना पसन्द करती है, उसका समय बात की बात में नष्ट हो जाता है।

पुत्रियो ! तुम अपने दिन रात के २४ घण्टों को, नियम बना कर, बाँट दो—उसी के अनुसार अपना हर एक काम करो। एक एक मिनट को अमूल्य रत्न समझो और बड़ी

सावधानी से अपने कामों को निश्चय समय के भीतर ही किया करो। 'समय' से ही जीवन बना है। 'समय' का सम्मान नहीं करने से जीवन निरर्थक हो जाता है। समय का सदुपयोग करने से वही आनन्द आता है जो भूख लगने पर स्वादिष्ट भोजन मिलने से।

इस संसार में समय सब से अमूल्य पदार्थ है। यही मूर्ख को भी पण्डित होने की आशा दिलाता है। समय ही के बल से निर्धन भी धन पैदा करने का साहस करता है। यही मनुष्य को बालक से युवा, युवा से वृद्धि बना देता है।

तुम अपने पढ़ने के घण्टों में पढ़ो। पाठ याद करने के जितने घण्टे हों, उनमें सिवा पाठ-स्मरण के और कोई काम मत करो। खेलने के समय खेलो। काम के समय काम करो। जो कुछ तुम्हारे दिन भर के काम हैं, सबों को नियम के साथ पूरा करो। आराम के लिये जो समय हो; उसमें निश्चिन्त हो कर आराम करो।

जो बालिका काम के 'समय' को भी योंही बिता देती है, वह आराम भी नहीं करने पाती। उसका कलेजा जलता रहता है। देह से वह चाहे पलँग पर लेटी रहे, आराम से बैठी रहे, खेलती रहे, मगर मन में पढ़ने-लिखने सीने-पिरोने की चिन्ता सवार रहती है। पुत्रियो! ऐसा

करना उचित नहीं—तुम सब काम पूरे पूरे करो, परिश्रम के समय अपने को उस में भरपूर लगा दो, फिर तो सदा आनन्द से विश्राम करो। जो 'समय' को अच्छे काम में व्यय करने से चूकता है, वह कभी धन-मान का अधिकारी नहीं होता। तुम यदि समय को अच्छे अच्छे कार्य्यों में लगाओगी तो तुम्हारा जीवन उज्ज्वल आलोकमय हो जायगा।

जिन जातियों में 'समय' का आदर है; उनके यहाँ धन-धान्य, विद्या, कला, किसी बात की कमी नहीं है। वे लोग अपने सब काम, समय पर करने के कारण, कभी कष्ट नहीं उठाते। जो मनुष्य नियमित समय पर काम करने का अभ्यासी हो जाता है, उसको बार बार घड़ी देखने की ज़रूरत नहीं पड़ती। ठीक समय पर उसको नींद आती है और यथा समय ही टूटती है। पढ़ने के समय किताब पर स्वयं हाथ उठ जाता है। समय पर ही भूख लगती है। और जो 'समय' की परवाह नही करता, उसके सब काम सोच-विचार में ही अधूरे निकल जाते हैं। अतएव, पुत्रियो!

तुम समय की महिमा को कभी मत भूलो।

नीरोगता।

स्वच्छ रखो तन, मन, वसन, भवन, द्वार, दे ध्यान।
मैलापन सव भाँति के, रोगों की है खानि॥

(पूजा-फूल,)

धर्मार्थकाममोक्षाणामारोग्यं मूलमुत्तमम्।

पुत्रियो! पढ़ने लिखने या और और महान् कार्य्य करने के लिये नीरोगता की वड़ी आवश्यकता है। जिस वालिका का स्वास्थ्य वचपन में ख़राव हो जाता है वह जन्म भर दुःख भोगती रहती है। और, जिसकी शारीरिक शक्ति वाल्यावस्था में ही पुष्ट हो जाती है, वह वड़ी होने पर, किसी तरह की तकलीफ़ आ पड़ने पर भी सह लेती है। क्षीण-शरीर होकर वह दुःख नहीं उठाती। स्वास्थ्य में ही जीवन का सच्चा आनन्द है। स्वास्थ्य की रक्षा नहीं करने से निर्विघ्न जीवन नहीं कटता—पूर्णरूप से ज्ञानार्जन नहीं होता—वुद्धि गम्भीर नहीं होती—विचार पुष्ट नहीं होते—मन दृढ़ नहीं होता। तात्पर्य्य यह है कि, स्वास्थ्य को सुरक्षित नहीं रखने से संसार में किसी तरह की कोई उन्नति नहीं कर सकता।

इस पुस्तक में भोजन शुद्धि, वस्त्र धारण, व्यायाम आदि विषयों के अन्दर नीरोगता को बहुतसी बातें बतायी गयी हैं पुनः थोड़े से नियम यहाँ और लिखे जाते हैं। इनको ध्यान से पढ़कर याद रखो।

बीमारी दो तरह की होती हैं—१ फ़सली और २ असली। फ़सली बीमारी वह है, जो ऋतु बदलने से स्वभावतः मनुष्य के शरीर में पैदा हो जाती है; जैसे जुकाम, आँख दुःखना वग़ैरः और हवा बिगड़ने से—जाड़े का बुख़ार, अजीर्ण इत्यादि। असली बीमारी वह है जो पैदा होकर शरीर में जकड़ जाती है जैसे गठिया, दमा, तपेदिक, अतिसार, जलन्धर तिल्ली इत्यादि।

फ़सली बीमारी से मनुष्य को इतना ही नुक़सान पहुँचता है, जो अच्छा होने पर ठीक हो सके। इन बीमारियों के आराम होने में भी अधिक समय नहीं लगता और अच्छे होने पर कुछ असर भी नहीं रहता। बीमारी के पहिले जैसा हृष्ट-पुष्ट मनुष्य रहता है वैसा बीमारी अच्छी होने पर फिर हो जाता है। मगर असली बीमारियाँ बहुत बुरी होती हैं, इनसे मनुष्य का सारा जीवन नष्ट हो जाता है। इनके अच्छे होने में बहुत समय लगता है। कोई कोई तो जन्म भर में नहीं छूटतीं और जो छूट भी जाती हैं, तो अपना असर इतना छोड़ जाती हैं कि मनुष्य किसी काम को नहीं करता।

पुत्रियो! तुम इस प्रकार सावधानता से नियम-पूर्वक चलो, जिसमें वीमारियों के पञ्जे में न पड़ो।

सब प्रकार की वीमारियाँ होने के मुख्य कारणों में से कुछ यही हैं:—(१) अशुद्ध वायु सेवन, अशुद्ध भोजन-पान, अप्रसन्न चित्त, असमय पर शरीर से काम लेना, मलीन वस्त्र-धारण, अजीर्ण भोजन, चिन्तित मन, प्रकृति-विरुद्ध आचरण इत्यादि!

हम लोग जिस वायु में सांस ले रहे हैं इसमें चार प्रकार के पदार्थ मिले हुए हैं—प्राणवायु (अक्सीजन), शुद्ध वायु (नाइट्रोजन), मिश्रित वायु (कार्बोनिक एसिड), और शुद्ध पानी के सूक्ष्म परमाणु इनका खुलासा वर्णन तुमने विज्ञान पाठ में पढ़ा होगा।

ये चारों पदार्थ जहाँ की वायु में अपने उचित परिमाण से मिले रहते हैं वहीं की हवा शुद्ध समझनी चाहिये। और जहाँ पर इनके परिमाण में कमी वेशी हुई वहाँ की वायु विगड़ी।

चारों ओर से वन्द मकान में की वायु मनुष्य को वड़ी हानि पहुँचाती है। यदि इसका पूरा विपैला ज़ोर वढ़ जाय तो मनुष्य का मरण तक हो जाता है। जिस मकान में हमेशा रहती हो उसको सदा साफ़ और खुला (हवादार उजियाला) रक्खो। रात्रि को घर एक दम वन्द करके

कभी मत सोओ। कुछ हिस्सा वायु आने जाने के लिये खुला रहना उचित है।

दिन में पेड़ पत्तों की जगह यह मिश्रित वायु बहुत कम होती है—वनस्पति की जड़ उसे चूस लेती है। इस कारण दिन में बगीचों में घूमना अतिशय गुणकारी है। रात्रि में विशेष नहीं। बहुत से मनुष्य, एक ही घर में, इकट्ठा होकर, मत सोओ। इससे हवा गन्दी हो जाती है। मनुष्यों की सांस की विषयुक्त वायु से घर भरा रहता है, बाहर की शुद्ध वायु नहीं आ सकती।

वायु जीवन की स्थिति के लिये सब से मुख्य पदार्थ है। इसकी शुद्धता पर सदा ध्यान देना चाहिये। पुत्रियो! अपने घर में कभी कभी गन्ध, धूप, शाकल्य, अगर बत्ती, कर्पूर, आदि पदार्थ, अपने हाथ से बना कर जलाया करो। इससे वायु शुद्ध रहती है।

शहर से जङ्गल की वायु बहुत अच्छी होती है। मतलब यह है कि, खुले स्थान में वायु का सञ्चार अच्छा रहता है। स्वच्छन्द वायु में स्वच्छता भरी रहती है।

तुम अपने पढ़ने-लिखने बैठने के स्थानों को खुली उजेली और शुद्ध जगह में रखो—इससे मस्तिष्क ठीक रहता है। शरीर नीरोग रह कर विद्यालाभ निष्कण्टक होता रहता है।

अशुद्ध भोजन-पान*—खाने पीने की गड़बड़ी से जो जो विकार शरीर में पैदा होते हैं, वे तो प्रत्यक्ष ही हैं। नियम पूर्वक आहार करने वाले बहुत कम बीमार पढ़ते हैं कितने ही अंग्रेज़ विद्वानों ने दो मनुष्यों को पृथक् पृथक् रखकर, एक को शुद्ध नियमित आहार देकर, तथा दूसरे को अशुद्ध भोजन देकर; उनकी जाँच की है। शुद्ध भोजन करने वाला ही नीरोग और हृष्ट-पुष्ट निकला।

पुत्रियो! भोजन सदा ताज़ा और अच्छी तरह पका हुआ करना उचित है। बासी, रूखी, कच्ची, या अधपकी चीज़ों के खाने से पेट भारी हो जाता है तथा पाचन-शक्ति का बिगाड़ होकर बीमारियाँ पैदा होने लगती हैं। भोजन की सामग्री बिनी-चुनी और पवित्र होनी चाहिये। महीनों का पिसा हुआ आटा, बहुत दिन की बनी तरकारी 'हलवा', बड़ी, पापड़, आचार आदि पदार्थ कभी मत खाओ। लाल मिर्चा, कड़वा तेल, गुड़ आदि चीज़ें गर्मी में अत्यन्त हानिकारक है। और और ऋतुओं में भी इनका कम व्यवहार किया करो। भोजन भूख से अधिक कभी मत किया करो। कम खाने से भारी वस्तु भी पच जाती

---

* "भोजन-शुद्धि" "वस्त्र-भूषण-धारण" इत्यादि विषयों पर इसी पुस्तक के आरम्भ में लेख है पढ़ लो।

है। ज्यादा खाने से हलकी चीज़ भी हानि पहुँचाती है। अजीर्ण भोजन विषपान-तुल्य कहा गया है। अजीर्ण रोग सारे रोगों का विधाता है। भोजन अच्छी तरह चबा चबा कर करना चाहिये। जल्दी जल्दी खाने से अच्छी तरह भोजन चबाया नहीं जाता। और इसीलिये वह पचता नहीं है। यदि हो सके तो पर्वों पर, महीने में कभी कभी एक वार उपवास व्रत करना उचित है। इससे धर्म के साथ ही साथ शरीर का भी लाभ होता है। पाचन-शक्ति बढ़ती है।

भोजन की ही भांति पीने का पदार्थ भी खूब शुद्ध होना चाहिये। गाय का दूध बहुत उत्तम गुणकारी पदार्थ है। पर दूध दुहाने के पश्चात् पौन घण्टे के भीतर ही गर्म करके पीना चाहिये। देर का दुहा हुआ कच्चा दूध हानिकारक है।

बहती हुई नदी या कूएँ का जल पीना चाहिये। पर, बिना छना हुआ जल कभी नहीं पीना चाहिये। मलीन जल पीने से उदर-रोगों का परिवार बढ़ता है। छना हुआ जल नीरोगता का कारण है। कूड़ा और धूल मिला हुआ पानी बीमारी पैदा करता है। अशुद्ध जल में छोटे कीड़े होते हैं जो पेट में उपद्रव मचाते हैं।

पानी पहले गर्म कर, फिर ठंढा करके, पिया जाय तो बहुत अच्छा है। इसमें पानी का स्वाद कुछ बिगड़ जाता

है, इस कारण सबके लिये, यह बात ठीक न हो सकेगी। छानना और निथराना ही काफ़ी है।

खड़े खड़े पानी पीना, खाली पेट में ही पानी पीलेना और परिश्रम से थके रहने पर—पसीने पसीने हो जाने पर तुरन्त पानी पीना, हानि कारक है। ऐसा पानी हृदय पर चोट सा लग जाता है।

जिस पानी में किसी तरह की सुगन्धि या दुर्गन्धि न हो और हलका, पतला, मीठा हो वह पानी बीमारी नहीं उत्पन्न करता—

"असमय पर शरीर से काम लेना"—इससे शरीर अशक्त होकर बीमारियों का घर बनने लगता है।

ट्रैम में जो घोड़े जोते जाते हैं, वे शीघ्र मर जाते हैं। नीतिकारों ने कहा है—"अति सर्वत्र वर्जयेत्।" हद् से बाहर कोई कार्य्य ठीक नहीं है। बाल-विवाह के कारण बहुत सी स्त्रियाँ और बच्चे मर जाते हैं; क्योंकि छोटी अवस्था में वह स्त्री गृहस्थी और बच्चों का भार नहीं सह सकती। पुत्रियो! तुम अपने ब्रह्मचर्य्य व्रत का पालन भली भांति करो; फिर रोग तो तुम्हारे दर्शन ही करते भाग जायगा।

बहुत बड़ा बोझ उठा लेना या शक्ति से बाहर कोई काय करना ठीक नहीं। क्योंकि, इससे हृदय और पेट की गति बिगड़

जाती है। बहुत सी बालिकाएँ कानों में इतने बड़े बड़े छेद कर डालती हैं, कि जिससे मस्तक को हानि पहुँचती है, तथा वहाँ के घाव के पक जाने पर बड़ी विपत्ति भोगती हैं अतएव कानों में छोटे छोटे केवल एक एक छेद करने चाहिये।

प्रकृति से अधिक गर्मी या शर्दी लगने से भी बीमारी उत्पन्न हो जाती है। अधिक गर्मी से हृदय सूख जाता है, मस्तक और आँखों में दर्द हो जाता है, जी घबराने लगता है। इस अवस्था में मनुष्य कोई काम करने योग्य नहीं रहता। अधिक शर्दी लग जाने से भी बड़े बड़े भयानक रोग प्रकट हो जाते हैं जैसे—कफ़, खाँसी, ज्वर इत्यादि।

अप्रसन्न चित्तवाला मनुष्य अवश्य अशक्त और बीमार रहता है। असन्तोष, पश्चात्ताप, चिन्ता, शोक, ईर्षा इत्यादि विकारों के होने से चित्त दुःखी रहता है।

प्रिय पुत्रियो! तुम सदा अपने मन में सन्तोष रखो—तुम्हें जो जो वस्तुयें प्राप्त हैं उन्हीं में खुश रहो। कभी बड़ी बड़ी चीजों के लिये हाय हाय करके अपना मन मत दुखाओ। संसार में कोई ऐसा नहीं है, जिसके पास सर्वोत्कृष्ट, मनोवांछित पदार्थों की पूर्ति हो। सब जीव बड़े से छोटे और छोटे से बड़े हैं। न कोई एकदम छोटा है और न कोई सर्वथा बड़ा है; जब तुम्हें बड़ी बड़ी चीजों

की इच्छा हो, और उन के न रहने का तुम्हारे जी में कुछ मलाल हो, तो अपने से भी कम विभव ऐश्वर्य्यवाले की ओर दृष्टि डालो। देखोगी कि, तुमसे भी छोटे छोटे जीव संसार में हैं।

किसी बात के लिये पछता पछता कर जी मत छोटा करो। कोई बुरा काम अगर हो गया भी हो तो वचन, मन काय, से आगे उसे नहीं करने का निश्चय प्रण कर लो। अपनी निन्दा सुनकर, उस निन्दित कार्य्य को मत करो, परन्तु पश्चात्ताप कर २ जलो मत, इससे हृदय पर धक्का लगता है।

चिन्ता शरीर को जला देती है। तुम अपने नवीन हृदय पर इसके अंकुर मत जमने दो। निश्चिन्त रह कर विद्या पढ़ो। आत्मा पर दृढ़ विश्वास करके चिन्ता को सर्वथा त्याग देने में ही कल्याण है। चिन्ता में हमेशा चूर रहने से आयु घटती है।

किसी बात पर शोक दुःख मत करो—सदा स्वयं प्रसन्न रहो। और, दूसरों को भी अपने कार्य्यों और बातों से प्रसन्न रखो। हमेशा चित्त प्रसन्न रखने से आत्मा की ज्योति बढ़ती है, बुद्धि विकसित होती है, जीवन सुखद होता है।

ईर्षा बड़ी बुरी चीज़ है इससे हृदय सुलगता रहता है।

किसी कवि ने ठीक कहा है:—

जो जन ईर्षा धारि मन, जरत देखि पर हित।
कैसे ऐसे पुरुष के, रहत सुशीतल चित॥

किसी प्रभावशाली को देख कर कभी मत जलो। डाह करने से हृदय में भी दाह होता है। रक्त सूख जाताहै—हृदय संकीर्ण हो जाता है—मन दुबला पड़ जाता है। विचार नीच और जीवन भार हो जाता है। अगर साहस है तो तुम भी उसके गुणों की प्रशंसा करके स्वयं उन गुणों को अपने में भरो। और, हर समय प्रसन्न रहो। चित्त दुःखी रहने से हृदय के खून की चाल बिगड़ जाती है, जिससे अनेक बीमारियाँ होने लगती हैं।

जिनका हृदय कमज़ोर हो जाता है, उनका चित्त अप्रसन्न और हरदम उचटा हुआ रहता है। चित्त को प्रसन्न करने के लिये लोग बगीचे में टहलते हैं। अनेक प्रकार की मनोरञ्जक सामग्री इकट्ठी करते हैं। चित्त को प्रसन्न करने से सब बीमारियाँ आप से आप कूच करने लगती हैं।

औषध का सेवन बहुत कम करना चाहिये। जो लोग दिन रात औषध खा खा कर अपने पेट को अस्पताल की आलमारी बना देते हैं, उन्हें फिर दवा फ़ायदा नहीं करती। जहाँ तक हो सके, छोटे छोटे रोगों को, परहेज़ कर के, भगा दो और यदि परहेज़ से कम न हो, रोग असाध्य कष्टसाध्य

हो तो, किसी अच्छे चिकित्सक की औषधि सेवन करो। औषधि को खूब यत्न से स्वच्छ स्थान में रखो और नियमित समय पर बना कर पीओ। हर बात में संयम का ध्यान रखो।

वर्त्तमान समय में हमारे देश की लड़कियों की ऐसी पशुवत् अवस्था हो रही है, जिसका ठिकाना नहीं। हमारी एक जातीय कन्या के गले के ऊपर गिल्टी निकली और ज्वर हो गया। दोनों रोगों के लिये दो अलग अलग दवाइयाँ मँगाई गईं। उसने गिल्टी पर लगानेवाले रौगन को पी लिया और पीने का अर्क गिल्टी पर चढ़ाया। रौगन में विष था, एक ही घण्टे में वह कन्या मरने मरने हो गई। बड़े परिश्रम से, कई उपचार करने से, वह बची। पुत्रियो! यदि दवा की शीशी पर दवा का नाम और प्रयोग-विधि न लिखी हो तो काग़ज़ जल्दी ही लगा दो और नाम तथा अनुपानादि का पूर्ण विवरण लिख कर, धर दो, तब सावधानी से पीओ।
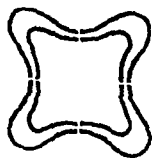
सेवा शुश्रूषा ।

गुणी जनों को देख हृदय में, मेरे प्रेम उमड़ आवे ।
बने जहाँ तक उनकी सेवा, करके यह मन सुख पावे ॥

मेरी भावना ।

किसी दुःख से दुःखी जीव की सेवा करना, उसका दुःख अपनी सामर्थ्य भर दूर करना, प्रत्येक बालिका का परम कर्त्तव्य है । माता-पिता की सेवा परम धर्म है । यदि किसी समय तुम्हारे साथ की पढ़नेवालियों में से कोई बीमार हो जाय या और ही किसी दुःख से दुःखी हो, तो तुमको निःस्वार्थ भाव से उसकी तन मन धन से सेवा करनी चाहिए ।

सेवा करते समय मेरा-तेरा और, ऊँच-नीच का विचार कर मुँह मत छिपाओ । निःस्वार्थ होकर सब की सेवा करना उचित है । किसी तरह की बीमारी से घबरा कर भागना उचित नहीं । जिस सेवा की, जिस समय आव-

श्यकता हो, उसे चित्त से घृणा हटा कर उसी समय अच्छी तरह करो। सब बीमारियाँ तुम्हारे शरीर में भी हैं। तुम्हारे माता-पिता ने बचपन में तुम्हारी जैसी सेवा की है, उसका शतांश भी तुम अपने जीवन भर में नहीं कर सकोगी।

जिन सहेलियों के साथ तुम आमोद-प्रमोद करती हो, पढ़ती-लिखती हो उनको विपत्ति में अकेली छोड़ना तुम्हारा धर्म्म नहीं है। इनके सिवाय और जितने दीन प्राणी हैं, उनमें से जिन जिन की सेवा तुम कर सको, करो। दूसरे के दुःख को अपना दुःख समझो। जो कन्या सेवा करने में तत्पर रहती है, उसको सब लोग देवी समझते हैं, बड़ी होने पर वही जगज्जननी कहलाती है, सब उसको अपनी पूज्य माता के समान समझते हैं। प्यारी बेटी! सच्ची सेवा बड़ा भारी मन्त्र है। इससे वन के भयानक जन्तु भी अपने वश में हो जाते हैं। सेवा करते समय दूसरे का ही भला होता है, यह बात नहीं है, उससे अपना भी बड़ा लाभ होता है। उससे अपने घमण्ड का नाश होता और अपनी आत्मा को वह अनिर्वचनीय सुख प्राप्त होता है, जो सभी भले काम करनेवालों को हुआ करता है। इससे अपने में विनय आती है। रोगों की पहचानें और उनके घटने बढ़ने के कारण आदि ज्ञात होते हैं।

रोगी की सेवा।

हे परमात्मन्!

"दीन दुखी लोगों की सेवा में मैं काटूँ आयु।
उनके चिन्ता-शिशिर-ग्रस्त गृह में फिर बहै सौख्य मधुवायु॥
रात्रि-दिवस मैं किया करूँ, निज बन्धु बान्धवों पर अति प्यार।
हो मेरा यह स्वार्थ सदा साधन करना पर का उपकार"॥
भाई माता-पिता न जिनके जो हैं सभी भाँति असहाय।
ऐसे दुःखित अनाथ अनाश्रय नरनारी बालक समुदाय॥
हों मेरे आराध्य देवता सेवा-शुश्रूषा के पात्र।
उनके क्लेश मिटाने में हो तत्पर निशि दिन मेरा गात्र॥

—लोचन प्रसाद पाण्डे।

पास बैठ, शरीर पर कोमलता से हाथ फेर, ठीक समय पर औषधियों को पिला, स्वच्छता से पथ्य बनाकर देने से ही रोगी की यथार्थ सेवा होती है। यदि रोगी घबराता हो तो उसे प्रिय वचनों से समझाना चाहिये। धार्मिक विषय छेड़ कर अनेक उत्तमोत्तम कथायें सुनाने से रोगी का मन अपनी तकलीफ़ पर से हट कर इधर उधर लग जाता

है। धार्मिक बातों को सुनाने से आत्मा में शान्ति और बल बढ़ता है। रोगी जब अधिक बेचैन हो, तो अनित्य आदि भावनाओं का स्वरूप समझाना चाहिये।

सेवा करते करते यदि बहुत दिन व्यतीत हो जायँ तो भी घबराना उचित नहीं है। किसी कवि का वचन याद रखो।

दोहा—विपति बराबर सुख नहीं, जो थोड़े दिन होय।
इष्ट मित्र अरु बन्धु हित, जानि परे सब कोय॥

विपत्ति सदा किसी जीव को पकड़े नहीं रहती। वह अपने बन्धु-मित्रों की परीक्षा करने के लिये आती है। रोगी के संमुख कभी ऐसे वचन मत बोलो जिससे वह घबरा जाय। उसको यथार्थ उपदेश करती रहो। औषधि पर ध्यान देती रहो, यही तुम्हारा कर्त्तव्य है।

जो दुःखी जीवों की सहायता करना नहीं चाहता उसका हृदय पत्थर का है, दयालुता का उसमें नाम नहीं है।

कहा है—"भूतव्रत्यनुकम्पां"—सब जीवों पर दया करो। पृथ्वी पर जितने प्राणी हैं, साधारण या व्रती, सब पर दया करनी चाहिये। व्रती त्यागियों की सेवा—इस तरह करो जिसमें उनका व्रत न बिगड़ने पाए। जो त्यागियों की सेवा करता है उनको दो दो लाभ हैं, एक मनुष्य की सेवा

का फल, दूसरे धर्म की सेवा का फल।। अतएव ऐसे प्यारे 'सेवा-धर्म' को तुम्हें अवश्य स्वीकार करना चाहिये और सब की सेवा के लिये सदा तैयार रहना चाहिये।

ब्रह्मचर्य्य।

जीवन का है लक्ष्य नहिं, भौतिक सुख का भोग।
विषय-वासना तज करो, परम शान्ति उपयोग॥

—लोचनप्रसाद पाण्डे।

प्रिय पुत्रियो! तुम्हारे सामने आज एक बड़ा गहन विषय उपस्थित है। इसका वर्णन और फल दोनों ही बड़े लम्बे हैं; परन्तु तुम्हारी अवस्था के अनुसार यहाँ पर कुछ लिखा जाता है। इसको ध्यान देकर पढ़ो।

विद्यालाभ करने के लिये ब्रह्मचर्य्य व्रत का पालन करना अत्यन्त आवश्यक है। ब्रह्मचारिणी पुत्री की गोद में विद्यादेवी बड़े प्रेम से आकर बैठ जाती हैं। ब्रह्मचर्य्य व्रत सभी रोग-शोकों को भगा कर शरीर में बल-बुद्धि का विकाश करता है, तेज और ज्ञान का प्रकाश करता है

ब्रह्मचर्य्य दो प्रकार से पालन किया जाता है,—एक पूर्ण और दूसरा स्वस्त्री-सन्तोष या स्वपुरुष-सन्तोष। पूर्ण ब्रह्मचर्य्य अतीव उत्तम है, और उसे बड़ा भाग्यशाली जीव ही धारण कर सकता है। प्रिय पुत्रियो! तुम्हारे हाथ में इस समय बड़ा अमूल्य समय है। जब तक तुम्हारे माता-पिता तुम्हारा विवाह-संस्कार न कर दें, तब तक तुम पूर्ण ब्रह्मचर्य्य-व्रत पालन करो। सब पुरुषों को अपने बाप भाई के समान समझो, अपने चित्तको निर्मल रखो; विवाह-शादी की बुरी वासनाओं को कभी पास मत आने दो, ब्रह्मचारिणी रह कर विद्या पढ़ो। ब्रह्मचर्य्य को दृढ़ रखने के लिये इतनी बातों का त्याग करने की आवश्यकता है।

बिना प्रयोजन बोलना, पुरुषों के मध्य व्यर्थ घूमना, दूर दूर तक अकेली चली जाना, किसी पुरुष की ओर बार बार देखना और उसके पहिनाव-उढ़ाव, रूप-रंग की प्रशंसा करना, ये सब बातें बहुत बुरी हैं। बुरे बुरे नाटक देखना, गन्दी भद्दी किताबें पढ़ना, धार्म्मिक और शिक्षाप्रद पद्यों को छोड़ कर बुरे भावभावों से भरी ग़ज़ल और रेखते गाना या सुनना आदि बातें ब्रह्मचारिणी पुत्रियों को कभी नहीं करनी चाहिये। जब बाहर जाने का मौक़ा हो, तो किसी बड़ी बहिन, माता या शिक्षिका के साथ जाना चाहिये। बाहर बड़ोंको, और अन्तरङ्ग में लज्जा को, सदा साथ रखना

उचित है। स्त्री का आभूषण लज्जा है। इसका पालन, प्यारी लड़कियो ! तुम आज से ही सीखो। जो बेटी बचपन में निर्लज्ज हो जाती है, उस पर फिर कभी पानी नहीं चढ़ता; जैसे कि, मोती की आब उतर जाने पर, फिर कभी नहीं आती। *

एक समय की बात है कि कोई राजकन्या खूब शृङ्गार पिटार किये हुई अपने पिता के घर हिंडोले पर झूल रही थी। उसी मार्ग से एक विद्याधर जा रहा था। राजकन्या की छवि पर मोहित हो, उस मूर्ख ने कन्या को बलात् गोद में उठा लिया, और ले उड़ा। मार्ग में उसने बहुतेरे लालच दिखाये, बहुतसी डाँट-साँस करके, उस कन्या को अपनी बनाना चाहा, परन्तु वह परम ब्रह्म-चारिणी थी, उस दुष्ट की बातों में क्यों आने लगी ? वह तो शीलव्रत में ऐसी दृढ़ थी जैसे सुमेरु पर्वत। कदा-चित् पर्वत हिल भी जाय, परन्तु सच्ची-साध्वी ब्रह्मचारि-णियों का व्रत नहीं डिगता। उस पापी विद्याधर की सब चेष्टाएँ विफल हुईं। उस कन्या ने अपना धैर्य न छोड़ा। अन्त में उसने हार कर राजकन्या को वन में छोड़ दिया, और आप अपने स्थान को चला गया। वह वन बड़े

---

* इण्डियन प्रेस, प्रयाग से "चरित्र गठन" नाम की पुस्तक ।।।) में मँगा कर पढ़ो।

बड़े भयानक जन्तुओं से भरा हुआ—एक दम मनुष्य की बस्तियों से दूर और निर्जन था, पर उस कन्या के शील-व्रत के प्रभाव से हर जगह उसे स्वर्ग सदृश अपना घर ही दिखाई देता था। कुछ समय बीतने पर, अपने बिछुड़े हुए माँ, बाप, भाई आदि से फिर जा मिली, और परस्पर जान-पहचान हो जाने पर, सब के सब प्रसन्न हुए। धन्य है! यह राजकन्या!! जिसने इतनी यातना सह कर भी अपने ब्रह्मचर्य्य की रक्षा की!!! इसी तरह अनेक प्रकार के कष्ट आने पर भी, प्यारी लड़कियो! तुम अपने व्रत की रक्षा कर, जीवन सफल करो।

दूसरा ब्रह्मचर्य्य—"पतिव्रत धर्म" है, जो विवाह-संस्कार होने के पश्चात्, पालन करना चाहिये। जिसके साथ माता-पिता विवाह कर दें उसकी आज्ञाकारिणी बन; उसी में प्रेमभक्ति करना प्रत्येक सती का कर्त्तव्य है। यदि पति में भाग्यवश कुछ त्रुटि भी हो तो, उदास न हो, किन्तु उन त्रुटियों को दूर करने का यत्न करना चाहिये। एक पति के सिवाय जितने पुरुष हैं सब को पिता, भाई और पुत्र के समान जानना चाहिये*। पतिव्रत धर्म का विशेष हाल आगे चल कर गृहस्थ-धर्म सम्बन्धी पुस्तकों में बताया जायगा।

---

*ऐतिहासिक स्त्रियाँ, जैनबाला विश्राम से मंगा कर देखो।

"विश्वेश ! हम अबला जनों के, बल तुम्हीं हो सर्वदा।
पतिदेव में मति, गति तथा दृढ़ हो हमारी रति सदा॥"

—भारतभारती

प्यारी कन्याओ ! याद रहे।

षट्पद।

अग्नि नीर सम होय, माल सम होत भुजङ्गम।
नाहर मृग सम होय, कुटिल गज होय तुरङ्गम॥
विष पीयूष सम होय, शिखर पाषान खण्ड-मित।
विघन उलट आनन्द होय, रिपु पलटि होय हित॥
लीला तलाव सम उदधिजल, गृह समान अटवी विकट।
इह विधि अनेक दुख होहिं सुख, शीलवन्त नर के निकट॥

'वृन्दावन'

॥ दोहा ॥

निज गुण आतमराम का, शील वरत पहिचान।
तीन लोक की सम्पदा, मिलै शील में आन॥
केवल-पद यासें मिले, शिव मन्दिर का राज।
शील वरत यातें भयो, सब वृत्तन सिरताज॥
सब सम्पति इस जगत में, मिलती भव-भव मांहि।
शील रतन पर्याय नर, दुर्लभ मिथ्या नाहिं॥

सदा ब्रह्मचर्य्य की रक्षा करके विद्या लाभ करो।

शीला सच्चरित्रा होकर रहोगी, तो यशस्विनी हो सकोगी। विषय-वासनाओं से बिल्कुल विलग रहना ही कीर्त्तिमती कामिनियों का कर्त्तव्य है। जो नीच कन्या है वही संसारिक सुख में लिपट कर अपना जन्म जन्मान्तर नष्ट भ्रष्ट कर डालती है। परमात्मा को साक्षी रख कर अपना व्रत पालो।

—:o:—

उत्साह।

लो भाग अपना शीघ्र ही, कर्त्तव्य के मैदान में।
हो बद्ध-परिकर दो सहारा, देश के उत्थान में।
डूबे न देखो नाव अपनी, है पड़ी मंझधार में।
होगा सहायक कर्म्म का, पतवार ही उद्धार में।

—भारतभारती
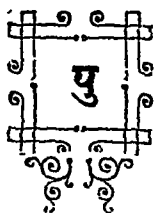
प्रियो ! उत्साह ही एक ऐसी वस्तु है, जो मनुष्य से, ऊँचे से ऊँचे काम करा देता है। जिस कार्य को देख सुन कर हम डरते हैं, कलेजा जिस के भार से काँप उठता है, वही कर्म्म उत्साह देवता के लिये कुछ भी नहीं है। जहाँ हृदय के भीतर उत्साह भरा कि, सारे
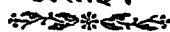
कठिन कार्य सरल हुए। जिस कार्य को करने का पूरा उत्साह हो जाता है, वह कितनी ही विपत्तियों से रोके जाने पर भी नहीं रुकता। उत्साही मनुष्य किसी दुःख को दुःख नहीं गिनता। विना उत्साह के कोई काम किया भी जाय, तो फीका पड़ जाता है। अधूरा ही रह कर वन्द हो जाता है।

पुत्रियो! तुम किसी कार्य को करने के लिये तव हाथ चढ़ाओ जव कि, उस काम में तुम्हें पूरा पूरा उत्साह हो और अपनी दृढ़ रुचि हो। तुम विद्या लाभ के समय, अपने उत्साह को विदुषी वनाने में, खूब तेज़ करो, कभी अपने मन को गिराओ मत। जिस विद्यार्थिनी का मन विद्या से हट गया है, वह कोटि उपाय करने पर भी परीक्षा में उत्तीर्ण नहीं हो सकती।

उत्साह तुमको मिनट मिनट में लाभ दिखलाता है। तुम उत्साह से पत्र लिखने वैठोगी तो अच्छा लिख सकोगी, और गिरे मन से लिखोगी तो तुम्हारी लिखावट वड़ी भद्दी उतरेगी। परीक्षा के परचे जव तुम्हारे हाथ में आवें, तव उन्हें वड़े उत्साह से उठा लो, और पूर्ण उत्साह से उत्तर लिखने के लिये क़लम उठाओ, तो संभव है कि, तुम उत्तीर्ण हो जाओगी। तुम्हारा परिश्रम निष्फल नहीं जायगा। इसके विपरीत यदि तुम निरुत्साह के साथ

लिखना शुरू करोगी, तो जानी हुई बातों को भी अच्छी तरह से न लिख सकोगी। फेल हो जाओगी। अतएव सब कामों को उत्साह से करो।

प्यारी लड़कियो! लेकिन इस बात को कभी मत भूलना कि उत्साह सदा सत्कार्य्य में होना चाहिये। बुरे काम में उत्साह मत बढ़ाओ। सच्चे दिल से भलाई के काम में उत्साह रखो। सात्विक उत्साह से सदैव अच्छे अच्छे विचार और अच्छे अच्छे काम होते हैं।

शिक्षाप्रद—उपदेशगर्भित—उपयोगी पुस्तकों को पढ़ने के लिये उत्कट उत्साह रखो। दीन दुखिये, असहाय, अन्धे, लंगड़े, लूले की सेवा और सहायता करने के लिये उत्साह प्रकट करो। अपने से श्रेष्ठ जनों की श्रद्धापूर्वक शुश्रूषा करने में और आज्ञा पालन करने में उत्साह दिखलाओ। अभ्यागत का स्वागत-सत्कार करने में उत्साह रखो। धर्मग्रन्थ को पढ़ने में उत्साह रखो। विपद में धैर्य्य धरने का उत्साह रखो। समझलो कि, बिना उत्साह के छोटा काम भी नहीं सरता।

नया नया 'उत्साह' कार्य्य में, उसे सर्वदा रहता था;
दया और ममता का मिल कर, स्रोत निरन्तर बहता था।

—शकुन्तला

—००—

आत्म-गौरव

मनुष्यमात्र में आत्मगौरव 'अपना आदर अपने ही में होना' अत्यन्त आवश्यक है। अतएव, प्यारी लड़कियो! तुम अपने को कभी तुच्छ मत समझो। बल्कि, अपने भीतर एक बड़ी भारी अपना और पराये का कल्याण करनेवाली आत्मा समझो। जिसने अपने आपे को गिरा दिया; जिसने यह समझ लिया कि, मैं दीन हीन मनुष्य हूँ मेरे किये क्या हो सकता है? उसने अपने आत्मबल को जानबूझ कर घात कर दिया। वह मनुष्य जिसका मन दीन बन चुका है; धन, जन, विद्या में चाहे वह कितना ही बढ़ा-चढ़ा क्यों न हो, कभी कोई कल्याण-कारी कार्य नहीं कर सकता।

जब तक हम अपने पैरों को स्थिर रखते हैं, तभी तक खड़े रह सकते हैं। यदि पैरों को थरथरा दें, तो शीघ्र ही गिरकर पृथ्वी पर आ रहेंगे। इसी तरह जिसने अपने को हलका समझ लिया है, उसकी सब क्रियायें हलकी ही होती हैं; और जो यह समझता है कि हम सब

कुछ हैं, हम बहुत कुछ कर सकते हैं, उसकी सब क्रियायें सम्पूर्ण सफल होती हैं।

"हम सब कुछ हैं" इसका यह अभिप्राय नहीं हैं, कि तुम घमण्ड करने लगो, और अपने को रानी महारानी मान बैठो। वलिक उसका अर्थ यह है कि, तुम अपने को कठिन से कठिन कार्य को भी कर डालने की शक्ति रखनेवाली आत्मा समझो। तुम्हारा हृदय नयी भूमि की तरह है, उस पर सदा गौरव और उत्साह के बीज बोओ। विद्यालाभ करने में अपनी ऊँची दृष्टि रखो। अच्छा काम चाहे कितना ही कठिन क्यों न हो उसको पूरा करने का अपने मन में साहस रखो।

किसी ने बड़प्पन का ठेका जन्म से नहीं लिया है। कोई मनुष्य यश और धन की गठरी साथ नहीं लाया है। जिन्होंने ये चीजें प्राप्त की हैं, उन्हों ने अपने ही आत्म-बल से प्राप्त की हैं। इस संसार में जितने महान् पुरुष हुए हैं, वे सभी पहले हमारे तुम्हारे से साधारण मनुष्य थे। मगर अपने आत्मबल को बढ़ाने के कारण ही, वे संसार में अमर हो गये हैं।

कोई केवल धनवान् होने ही के कारण बड़ा नहीं होता, न केवल विद्या पढ़ने से ही बड़प्पन मिलता है। अपने को सर्वशक्तिमान् आत्मा समझ कर, अपने में अने क

सद्गुणों का सञ्चय करने ही से बड़प्पन मिलता है। बड़प्पन किसी को देने लेने की चीज़ नहीं है। एक राज-पुत्र को सारी प्रजा के सामने राजतिलक किया जाता है, सब लोग एकबार नमस्कार करते हैं, सब उसकी आज्ञा पालन करना स्वीकार करते हैं, सब तरह से उसे अपना सब से बड़ा राजा मान लेते हैं; परन्तु, यदि वह राजपुत्र स्वयं योग्य न हो और अपने सब कार्यों को ठीक ठीक न देखे, अपने गौरव की परवाह न करे, तो थोड़े ही दिनों में राजपद से भ्रष्ट हो जाता है। वह नीचों की श्रेणी में गिना जाने लगता है। फिर कोई उसको बड़ा नहीं कहता। इसके विपरीत देखिये कि, शेर को कोई वन का राजा बना कर राजतिलक नहीं देता। मगर, वह अपने शक्ति-शाली कार्यों से स्वयं वन का राजा बन बैठता है।

प्रिय पुत्रियो! तुम भी अपने निज बल से ही काम लो, अपना गौरव बढ़ाओ, अपने करने योग्य कार्यों में खूब परिश्रम करो। बचपन में गुड़िया खेलने, और बड़ी होने पर थोड़े बहुत घर के धन्धे कर लेने में ही अपने स्त्री-जन्म के गौरव को मत नष्ट करो। तुम अपने को बड़े बड़े धार्मिक और लौकिक कार्य करने योग्य बनाओ। हिम्मत मत हारो। सब कुछ अच्छा काम करने योग्य बनो। अपने गौरव का सदैव ध्यान रखो।

उदारता।

अन्तः करण उज्ज्वल करो, औदार्य्य के आलोक से,
निर्मल बनो सन्तप्त होकर, दूसरों के शोक से।

मनुष्य में उदारता का गुण अवश्य होना चाहिये। जिस हृदय में उदारता नहीं है, वह निर्गन्ध सूखा हुआ पुष्प है। शुभ कार्यों में अपना तन, मन, धन निस्संकोच भाव से दे डालने को ही उदारता कहते हैं। जिस हृदय में सङ्कोच है, उसमें उदारता का नाम भी नहीं है। 'उदारता' और 'सङ्कोच' ये दोनों ही शब्द परस्पर विरोधी हैं। जहाँ एक है, वहाँ दूसरा नहीं.।

प्रिय पुत्रियो! तुम अपने हृदय में सङ्कोच को स्थान मत दो, सदा अपनी उदार बुद्धि रखो। क्योंकि, उदारता हृदय का भूषण है। जितने बड़े कार्य इस भूमण्डल पर हुए हैं, सब उदार मनुष्यों द्वारा ही हुए हैं। और जितने प्राणी इस जगत में दीन हीन दीखते हैं, वे उदारता-रहित होने ही से इस गति को प्राप्त हुए हैं।

दान देने के पूर्व उदारता की आवश्यकता है। परोप-कार करने के पहले भी उदारता की आवश्यकता है। सङ्कोच के साथ जो काम किया जाता है, वह अधूरा रह जाता है, कभी पूर्ण नहीं होता। सङ्कोच में लोभ का वास है। और उदारता में परोपकार का। प्यारी लड़कियो! तुम्हे चाहिये कि, उदारता को धारण कर लोभ से बचो। अपने को सदैव, जगत् की सेवा करने योग्य सामर्थ्यवाली समझो। किसी शुभ कार्य के करने में सङ्कोच मत करो। अपने सभी कार्य दिल खोल कर उदारता के साथ करो।

भारत की स्त्रियाँ उदारता के लिये विख्यात हैं। अपनी माता को ही देखो तो कितना परिश्रम उठा कर भोजन तैयार करती हैं, और सारे कुटुम्ब को भोजन कराकर, सब के खा लेने के बाद, स्वयं खाती हैं। वह उनकी उदा-रता का ही माहात्म्य है, कि अपने भोजन की पर्वाह न कर, कुटुम्ब-पोषण की चिन्ता करती हैं। परोपकारिता की जड़ उदारता है। इसलिये, सब सद्गुणों के पूर्व्व अपने हृदय में उदारता का ही विकाश करो। उदार मनुष्य का ही इस पृथ्वी पर जन्म-ग्रहण करना सफल है। जिसका हृदय संकीर्ण है—वह कभी कोई बड़ा काम दुनिया में नहीं कर सकता। बिना उदारता के कभी विश्व-प्रेम नहीं प्रकट होता! जिसका हृदय उदार है उसके लिये सारा संसार

अपना ही है। उदार के हृदय में शान्ति राज्य करती है। जहाँ उदारता की तूती बोलती है वहाँ फूट, वैर, कलह नहीं टिकते। बस, तुम भी उदारशीला बनो।

ऊँचा पद पाते हैं वेही, जो दीनों को देते दान।
केवल कोटि ध्वज होने से, कभी नहीं मिलता है मान।
रत्नाकर हो कर भी भू पर, पड़ा हुआ है वारिधि नीच।
नभ-सिंहासन घन-दानी ने, पाया अखिलजगत को सींच।

—सूक्ति मुक्तावली

—**—

परोपकार और विद्याफल।

परहित बस जिन के मन माहीं।
तिन कहँ जग दुर्लभ कुछ नाहीं॥
पर हित लागि तजहिं जे देही।
सन्तत सन्त प्रशंसहिं तेही॥

—तुलसी दास

"परोपकारः पुण्याय, पापाय परपीडनम्।"

प्रिय पुत्रियो! विद्यालाभ कर, तुम अपने जीवन को परोपकारी बनाकर व्यतीत करो। परोपकारी जीवन बड़ा ही प्यारा जीवन है। जैसा सुख और सन्तोष इस जीवन में है वैसा दूसरे में नहीं। "विद्या

प्राप्त करने का वास्तविक मतलब क्या है?" इसको बहुत कम लोग जानते हैं। कोई ख़याल करता है कि, धन कमाना ही विद्या पढ़ने का फल है। कोई नामवरी को ही विद्या का फल समझता है; परन्तु, ये फल यथार्थ नहीं हैं—विद्या का फल है सच्चा सुख। अब यह विचार करना चाहिए कि सच्चा सुख किस में है? धन कमाने में है या बड़ा मान सम्मान प्राप्त करने में है?—नहीं यथार्थ सुख इन दोनों में से किसी में भी नहीं है। अक्षय सुख, सच पूछो तो, स्वार्थत्याग और परोपकार ही में है। स्वार्थ छोड़ने पर तृष्णा कम होती है। सन्तोष बढ़ता है। और यही सुख का मूल कारण है।

जो स्वार्थी जीव हैं, उनकी सैकड़ों इच्छाओं में से कभी कोई इच्छा पूरी हो पाती है, तब उनको किञ्चित् सुख मिलता है; परन्तु परोपकारी मनुष्य को दुनिया के जितने अच्छे कार्य होते हैं, सब में उतना ही सुख मिलता रहता है। जैसे एक स्वार्थ से घिरी हुई लड़की जो यह चाहती है, कि हाथ में चमकदार कंकण मैं ही पहिन कर सभा में जाऊँ—उसको जब तक कंकण न मिल जायगा तब तक दुःखी रहेगी, तथा दूसरी को पहने हुए देख कर कुढ़ा करेगी। परन्तु जो परोपकारिणी कन्या यह चाहती है कि, मेरी दस बीस बहिनें कंकण पहिन कर सभा में

जायँ जिससे हमारी जाति का अभ्युदय प्रकट हो; उसको इतने कंकणों का सुख सहज में मिल जाता है। चाहे अपने पास कंकण न भी हो, तो भी वह सैकड़ों कंकण पहनने के सुख को भोगती है।

प्यारी लड़कियो। पराये को तुम अपना समझो, दूसरे के दुःख में भाग लो। दूसरे का दुःख दूर करने में अपने मन, वचन, काय से तत्पर रहो। फिर सारे संसार का सुख तुमको प्राप्त होगा। एक चक्रवर्त्ती राजा भी उस सुख को नहीं पा सकता। परोपकारी का सुख संसार मात्र के सुख में है। जगत् के सब जीवों के सुख को देख कर वह सुखी रहता है। पढ़ लिख कर जिसने पृथ्वी पर पराये की भलाई नहीं की, उसका दुनिया में कुछ भी महत्त्व नहीं है।

जो परोपकारी नहीं है, सदाचारी नहीं है, वह पढ़ा लिखा हो, तो भी निन्दा का पात्र है। जो पढ़ लिख कर भी स्वार्थ में अन्धा हो रहा है, पंच पापों—हिंसा, चोरी, झूठ, कुशीलता, और तृष्णा—में फसा है; उसका विद्या पढ़ना एकदम निरर्थक है। मनुष्य जन्म निष्प्रयोजन है।

प्यारी बालिकाओ! इस समय स्त्री-समाज अज्ञान-रूपी बड़े भारी कष्ट में फँसी है। हमे आशा है कि, तुम अपने नवीन जीवन को परोपकारी जीवन के मार्ग

पर ला कर, बड़ी होने पर, स्त्री-संसार का उद्धार करोगी, स्वयं नीति मार्ग पर चल कर औरों को भी उसी राह पर चलाओगी। इससे तुम्हारे सुख सन्तोष की वृद्धि होगी।

परोपकार इस लोक में ही नहीं परलोक में भी परम सुख का दाता है। जैसा कि, नीचे लिखे दृष्टान्त से विदित होगा।

प्राचीन समय में चम्पापुरी नगरी में वृषभदास नाम का एक बड़ा प्रतिष्ठित सेठ रहता था। उसकी रानी का नाम जिनमती था। उसी के यहाँ एक ग्वाला नौकर था जिसका नाम था "सुभग ग्वाला"। यह ग्वाला बड़ा सीधा सादा और सच्चा मनुष्य था। एक सन्ध्या को वह वन से गाय भैंसों को चराकर लौट रहा था कि, मार्ग में एक ध्यानारूढ़ मुनि को देखा। उस दिन शीत बहुत पड़ रहा था इसी से ग्वाले ने सोचा कि हा! आज की रात्रि इन ध्यानारूढ़ मुनि की कैसे कटेगी? कहीं ऐसा न हो कि, शीत के मारे इस साधु को कोई भारी तकलीफ़ उठानी पड़े। बस, ऐसा विचार कर वह वन में ही रह गया और उसने अग्नि जला कर मुनि जी के चारों ओर गर्मी रखी। इस प्रकार उसने रात भर मुनि जी की सेवा में बितायी। प्रातः काल मुनि जी जब ध्यान छोड़ कर जाने

लगे तब उन्होंने ग्वाले को देखा और दया कर के महा-मन्त्र बतला दिया "णमो अरहन्ताणम्"—और कहा कि, इसी को हर समय जपा करना ।

ग्वाला उसी दिन से निरन्तर उस शुद्ध मन्त्र का ध्यान करने लगा। ग्वाले का हाल सुन, सेठ ने भी इसके परोपकार और गुरुभक्ति की प्रशंसा कर, उस दिन से उसे बड़े आदर मान से रखना शुरू किया। एक दिन वह ग्वाला गाय की बछियों के पीछे नदी में डूब गया। और मर कर सेठ वृषभदास के ही घर, नाना गुणों से सम्पन्न पुत्र-रत्न पैदा हुआ। सेठ वृषभदास ने इसका नाम सुदर्शन रखा। यह सेठ सुदर्शन बड़े वैभव के स्वामी हुए। और इनके भी कई पुत्र आदि हुए। बड़े बड़े सांसारिक भोगों को भोग कर, अन्त में दीक्षा ले, साधु होकर, संसार का मोह छोड़ परम तप ध्यान करके, "केवल-ज्ञान" को प्राप्त हो गये; जिससे तीनों लोक प्रत्यक्ष देखने लगे और अन्त में मोक्ष प्राप्त कर आवागमन से छूट, परम सुख के भोक्ता बन गये।

प्रिय पुत्रियो! यह परोपकार और साधु-सेवा का ही फल था कि, एक साधारण ग्वाले को धीरे धीरे राजपाट, समस्त वैभव और मोक्ष तक मिल गया। अतएव, तुम भी अपने हृदय में इसके अंकुर अभी से खूब दृढ़ता से रोपो। अपने शरीर को दूसरे जीवों की सेवा के लिये, धन को

असहायकों के पोषण करने के लिये और मन को जगत् की भलाई सोचने के लिये समझो।

एक श्लोक कण्ठस्थ कर लो—

परोपकाराय फलन्ति वृक्षाः
परोपकाराय वहन्ति नद्यः।
परोपकाराय दुहन्ति गावः
परोपकारार्थमिदं शरीरम्॥

अर्थात् परोपकार के ही लिये वृक्ष फलते हैं, परोपकार के लिये नदियाँ बहती हैं, दूसरे के ही भले के लिये गाय दूध देती है। वास्तव में यह शरीर परोपकार के ही लिये है।

जब जड़ वस्तुएँ भी दूसरों का इतना भला करती हैं तब हम मनुष्य होकर दूसरों की भलाई में अपना समय न लगावें? इसलिये प्यारी बेटियो! अवश्य ही परोपकारिणी बनो।

धर्म न पर उपकार समान।
जग में कहीं और है आन॥
इससे तज के छल अभिमान।
करो सदा पर का कल्यान॥

—'पूजाफूल'

—:*:*:—

विनय।

"सदा करो सब का सम्मान,
करो किसी का नहिं अपमान।
जो तुमको है सुख की चाह,
पकड़ो सत्य धर्म की राह" ॥

--'पूजाफूल'।

ह गुण प्रत्येक जीव में होना आवश्यक है। विनय से सब कार्य सिद्ध हो जाते हैं। विद्या पढ़ कर विनयी होने से सोने में सुगन्ध आ जाती है। सब लोग प्रशंसा करते हैं। विनयवती कन्या सर्व प्रिय होती है, उसके शत्रु भी वश में हो जाते हैं। जिसने विद्यालाभ के साथ साथ विनयलाभ नहीं किया वह "निर्गन्धा इव किंशुकाः" (विना सुगन्ध के फूल) के समान है। सब लोग उसे उद्धत और घमंडी कह उस की ओर तिरस्कार की दृष्टि से देखते हैं। काम पड़ने पर कोई सहायता नहीं करता।

विद्या का विनय से बड़ा घनिष्ट सम्बन्ध है। बिना विनय के विद्या फलदायिनी नहीं है। देखो—

विद्या ददाति विनयं, विनयाद्याति पात्रताम्।
पात्रात्वाद्धनमाप्नोति, धनाद्धर्म्मः ततः सुखम्॥

अर्थात् विद्या विनय देती है। विनय से योग्यता आती है। योग्यता से धन प्राप्त होता है। और धन से धर्म हो सकता है। धनवान् ही दानादि कर, पुण्य अर्जन कर कसता है। पुण्यात्मा ही सुख का भागी बनता है।

बेटियो! क्रमशः विनयगुण ही तुम को यश, सुख, मान, धन आदि की प्राप्ति में सहायता देगा। इसलिये विनयवती बनना सब कन्याओं का परम धर्म है।

विनय क्या है?—दूसरी वस्तु को आदर से देखना। और, आप घमण्ड न करना, यही विनय है। विनय यथायोग्य, सब की करनी उचित है। ज्यादा-कम करने से उलटा असर पड़ता है। जैसे तुम को यदि किसी सभा की स्वयंसेविका बनाया जाय और यह काम सौंपा जाय कि, तुम सब लोगों को यथास्थान बैठाओ। उस समय यदि किसी छोटे मनुष्य को, तुम व्याख्यान-दाताओं की बराबर जगह दोगी तो, वह तुम्हारी इस अधिक विनय को क़दापि पसन्द नहीं करेगा। बरन्, लज्जित होकर उस जगह से जल्दी ही भागेगा। शायद वह यह भी ख़याल करले कि, इस कन्या

ने मुझे व्याख्यानदाताओं में शामिल कर, नीचा दिखाना चाहा है। यहाँ पर देखो, तुम्हारी अधिक विनय ने कैसा उलटा फल दिखलाया ?

इसी तरह कम विनय से भी बुरा फल होता है। यह तो प्रत्यक्ष प्रकट है कि, किसी को हज़ार उत्तमोत्तम पदार्थ दो, परन्तु जरा सा भी निरादर होने से, वह कदापि सन्तुष्ट नहीं होगा। बड़े बड़े आदमियों और राजा-महाराजाओं में विनय की हिनाधिकता होने से लड़ाई हो जाती है।

प्यारी लड़कियो ! तुम सदा अपने मन में यही विचार रखो कि, मैं सब की भलाई करनेवाली सेविका हूँ। सब से वर्त्ताव करते समय, सरल स्वभाव से, बिना घमण्ड के, पेश आओ। जितनी विनय जहाँ पर चाहिये उतनी ही करो। माता-पिता आदि गुरु-जनों को नमस्कार करने से, हर तरह से उनके अनुकूल चलने से, उनके सामने अपने अङ्ग-उपाङ्ग सीधे सादे रखने से, नीचे आसन पर बैठने से, सेवा करने से, विनय प्रगट होती है। बड़ों की आज्ञा का सहर्ष पालन करना, विनय का मुख्य भाग है।

बराबर वालों के साथ भलाई करने और उनसे भलाई के बदले कुछ न चाहने से; अभिमान-रहित रहने से, विनय होती है। उन्हें बराबर के आसन पर बैठाना, किसी बात में उन्हें नीचा न दिखाना, निकट आने पर कुशल पूछना

इत्यादि विनय है ।

भाई भौजाई बहिन, प्रिय कुटुम्ब परिवार ।
किया करो इन सकल से, प्रीति पूर्ण व्यवहार ॥

—'पूजाफूल' ।

अपने से छोटों की भी विनय करना उचित है। छोटों पर दया की दृष्टि रखना ही परम विनय है। मीठे वचन बोलना, उनके अच्छे कार्य को देख चुप न बैठना वरन् धन्यवाद देना, उनसे काम तो लेना पर सदा उनका कृतज्ञ होना, उनके किये कार्यों को बरबाद कर व्यर्थ घमण्ड में न फूलना, यही विनय है। कष्ट आने पर नीच से नीच को भी आश्रय देना, दुःखित हो तो मीठे मीठे वचनों से प्रबोध देना, जो अपने को नमस्कारादि करे उसको यथायोग्य लेना, जो मिलना चाहे उससे मिलना, यही विनय है !

देवधर्म्म की विनय सबसे अधिक करनी चाहिए। देवालय में अति नम्रता से प्रवेश करना, भगवद्गुणों का स्मरण करना, धर्म-मार्ग पर चलना, अनीति त्यागना, शास्त्राज्ञा का पालन करना इत्यादि बातें देव-धर्म्म की विनय हैं।

प्यारी लड़कियो ! तुम अपने गुणों को चमकाने की कोशिश मत करो। जो जो गुण तुम में हैं, वे बिना परिश्रम के ही, जगत् में प्रकट हो जायँगे। केवल यही ध्यान

रखो कि वे गुण तुममें भरपूर बने रहें। कभी ऐसा असत् व्यवहार मत करो जिससे तुम्हारे गुणों का नाश हो जाय यदि तुम गुणवती हो तो नम्रता करने पर भी सबसे बड़ी और पूज्य हो। जिस पुष्प में सुगन्ध होती है। वह बिना प्रयत्न के ही लोगों को परिचित बना देती है, और जो निर्गन्ध पुष्प है वह सुन्दर होने पर भी श्रेष्ठ नहीं हो सकता अतएव तुम्हारे विनय गुण की सुगन्ध तुम्हें नम्र होनेपर भी श्रेष्ठही बनाएगी।

विनय, वचन, मन, कर्म से, यथायोग्य जग माँहि।
करहु प्रीति सब जन विषे, नीच ऊंच जे आहिं॥

गुरु नानक ने भी उपदेश किया है कि:—

"नान्हक" नन्हें हो रहो, जैसी नान्ही दूब।
घास पात सब सूखिंगे, दूब खूब की खूब॥

—'गुरुनानक'

अर्थात् तुम सब से विनयपूर्वक वर्त्तो। विनयवाले की संसार में सब तरह से जय होती है। और जो विनयी नहीं हैं उनका शीघ्र ही नाश हो जाता है। अतएव, अपना कल्याण चाहती हो तो—

मेरा यह उपदेश कभी तू भूल न जाना।
शील सुधा से सींच जगत को स्वर्ग बनाना॥

—शकुन्तला।

स्वदेश-प्रेम ।

माता के सम देह जगत में और न कोई,
मातृभूमि-सम सुखद जगत में ठौर न कोई ।
मातृभूमि है प्राण, प्राण हैं माता प्यारी,
प्राणहीन हम हुए जहाँ ये गईं बिसारी ॥
हर्षित हो दस मास गर्भ में हमको धारे,
त्यागे भोजन शयन जिन्होंने निज सुख सारे ।
जिनसे कञ्चन-मई हुई मिट्टी की काया,
है कृतघ्न जो भूल जाय उस माँ की माया ॥

—लोचनप्रसाद पाण्डेय ।

जिस देश में जो उत्पन्न होता है, उस देश से प्रेम रखना, उसकी सामर्थ्य भर सेवा करना, सांसारिक जीवों का कर्त्तव्य है । कहा है कि "जननी जन्मभूमिश्च स्वर्गादपि गरीयसी" अर्थात् 'माता और मातृभूमि स्वर्ग से भी बढ़ कर हैं' ।

जिस छोटे बड़े देश में तुम्हारा जन्म हुआ है, उससे कदापि घृणा मत करो। तुम्हारे देश में जिन बातों की

कमी दिखाई देती हो, उन्हें पूरा करने में भाग लो। जिस ने अपने देश की कुछ भी सेवा नहीं की, वह देश का ऋणी रह जाता है।

प्यारी बेटियो ! तुम्हारे लिये देश की सेवा यही है कि, अपने देश की बनी हुई वस्तुओं को काम में लाओ। मोटे, महीन, जैसे वस्त्रादि "तुम्हारी भारतभूमि" में बनते हैं, उन्हें ख़रीदो। जिससे दरिद्र भारतवासियों का रोज़गार बढ़े। देशी चूड़ी, बरतन आदि चीज़ों का ही व्यवहार करो।

विदेशी चीज़ों का शौक छोड़ो, गंजी गाढ़े से प्रेम करो और खूब महीन सूत कातना सीखो। देखो। गांधी महात्मा नित्य सूत कातते हैं। महात्मा जी का कहना है कि जो महिला चर्खा कातती है, वह देश की सेवा करती है।

तुम्हारे देश में जो जो बुरी प्रथा हों, जैसे बाल-विवाह बे-मेल विवाह, वृद्ध-विवाह, दहेज़ का अपव्यय, भण्ड वचन बोलना, वेश्या-नृत्य कराना, लेन देन की कुरीतियों में हज़ारों रुपये बरबाद करना, भाई भाई में लड़ झगड़ कर मामले मुकद्दमों में धन नष्ट करना। इन सब देश को सत्यानाश करनेवाली कुरीतियों को अपने दिल पर मत जमने दो। बड़ी होकर, गृहिणी होने पर, इन कुरीतियों को रोकने का पूर्ण प्रयत्न करो। गृह-स्वामिनी हो कर अपने परिवार का परिष्कार करो। हितू, नातेदार, कुटुम्बी

सम्बन्धियों के परिवार को भी परिमार्जित करो। आदर्श परिवार बना कर आदर्श-पत्नी बनो। टोला-मुहल्ला, पास-पड़ोस, सबका सुधार करने में भाग ले। अपने देश से घृणा कर, विदेश में जा रहना पसन्द मत करो। वरन्, देश-सेवा करो। अपनी असंख्य बहिनों को शिक्षिता बनाओ। देशी समाचार पत्र ख़रीदो। उनकी सहायता करो। स्त्री-शिक्षा का प्रचार करने में, अपना समय व्यतीत करो; जिससे देश की भलाई हो। यही तुम्हारा स्वदेश-प्रेम है। स्वदेश-प्रेम करना विद्यावती का परम कर्त्तव्य है।

"ले कर जन्म जहाँ सुख पाया।
अन्न शाक है जिसका खाया॥
उसे कभी मत जाना भूल।
जन्मभूमि जो सुख का मूल"॥

—'पूजाफूल'

"मातृ-महत्त्व"

(श्रीकृष्ण-वचनामृत)

"सरवस सुख की मूल, अभय जीवन जगदैनी।
परम उच्च पद स्वर्ग-सरिस स्वातंत्र्य निसैनी॥
बल पौरुष-अभिमान-शक्ति उपजावनहारी।
जाकी पय की धार सुधा-धारहुँ ते प्यारी॥
वे प्रेम भरे भरि अंक निज
शशि-मुख ते हिय-तम-हरनि
इन सब को देखि प्रतच्छ जग?
यश भाग भरी 'भारत' जननि!!!

"इनहिन बल ते आज जग, भारत स्वर्ग समान।
इन की नित सेवा करहु, जो चाहत कल्यान"॥

टरि हैं नक्षत्र दिवाकर हूँ; अरु कोटि कलाधर चन्द्र टरैंगे।
निकसी जग जेती दिखात कली, ये फूल फले झखमार झरैंगे॥
गढ़वन्त महन्त महाबलवन्त, कढ़ि दन्त दुरन्त ये अन्त भरैंगे।
यदि हैं इन मातन की करनी, यहि गान सदा सुर स्वर्ग करैंगे॥

—माधो शुक्ल-महाभारत-नाटक"

मातृ-भाषा की सेवा।

स्नेहमयी जननी का अनुपम दान 'मातृ-भाषा' सुख मूल।
ज्ञान प्राप्तकर जिसके द्वारा हरते हैं हम हिय की शूल॥
उस हिन्दी—उस 'प्यारी हिन्दी' भाषा की मैं भक्ति समेत।
'सेवा' किया करूँ, हे ईश्वर! सदा सर्वदा शक्ति समेत॥

—लोचन प्रसाद पाण्डेय।
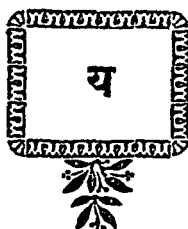
यद्यपि सभी भाषाओं का ज्ञान प्राप्त करना अच्छा है, तथापि मातृ-भाषा का जानना सबसे ज़रूरी है। जिस मनुष्य को अपनी मातृ-भाषा का भलीभांति बोध नहीं है, वह अपने देश और धर्म्म का सच्चा उपकार नहीं कर सकता। पुत्रियो! जिस भाषा को तुमने अपनी माँ से सीखा है, उसमें अच्छी तरह पाण्डित्य प्राप्त करो। इसके बाद, मातृभाषा की सेवा करो। लेख लिखना, पुस्तकें बनाना उन्हें छपा कर अपनी भाषा के भण्डार को भरना ही, मातृभाषा की सेवा है।

अपनी मातृभाषा की वृद्धि करने का यत्न करती रहो। अपनी भाषा की पुस्तकें, अन्य बहिनों को बाँटो, और उन्हें पढ़ने का उपदेश करो।

पुस्तकों को खरीदने में संकोच कदापि मत करो। दूसरी वस्तुएँ तो, तुम्हारे धन को खर्च कराकर, पुरानी हो कर नष्ट हो जाती हैं, परन्तु पुस्तकें तुम्हें ज्ञान दान देकर और अनेक अच्छे मार्ग बतला कर जब देखो तब नई की नई बनी रहती हैं।

जिस कन्या को पुस्तकों से प्रेम है, वह पुस्तकों का संग्रह रखती है। और समय पड़ने पर उनसे बहुत लाभ उठाती है। दूसरों को पढ़ने के लिये देकर उन्हें भी लाभ पहुँचा सकती हैं। ऐसी कन्या मातृभाषा की सेवा अवश्य करती है।

चाहे तुम दूसरी भाषा में कितनी ही पण्डिता क्यों न हो जाओ, परन्तु मातृभाषा के व्यवहार को मत छोड़ो। पत्रादि प्रायः अपनी मातृभाषा में ही लिखो। अपनी भाषा की अच्छी अच्छी पुस्तकें पढ़ो। स्वभाषा के समाचार-पत्रों को आदर की दृष्टि से देखो--उन्हें नित्य प्रति पढ़ा करो, इससे तुम्हारा मातृभाषा-प्रेम बढ़ेगा। और ज्ञान का भी प्रकाश होगा।

भारतेन्दु की इस किरण का प्रकाश अपने हृदय में डालो—

दोहा ।

निज भाषा उन्नति अहै सब उन्नति को मूल ।
बिन निज-भाषा-ज्ञान के, मिटत न हिय को सूल ॥

—*:o*:o:*—

साधारण उपदेश ।

विष-पूर्ण ईर्ष्या द्वेष पहले शीघ्रता से छोड़ दो ।
घर फूंकने वाली फुटैली फूट का सिर फोड़ दो ॥
मालिन्य से मुँह मोड़ कर मद मोह के पद तोड़ दो ।
टूटे हुये वे प्रेम-बन्धन फिर परस्पर जोड़ दो ॥

—भारतभारती

भागो अलग अविचार से, त्यागो कुसंग कुरीति का ।
आगे बढ़ो निर्भीकता से, काम है क्या भीति का ॥
चिन्ता न विघ्नों की करो, पाणि-ग्रहण कर नीति का ।
सर तुल्य अजरामर बनो, पीयूष पीकर प्रीति का ॥

—भारतभारती

दृय को सदा स्वच्छ रखना चाहिये। किसी समय मलिनता को मत आने दो। जिस कार्य्य को करो, सच्चे हृदय से करो। छिप कर मत करो। क्योंकि तुम्हारे सब कार्य्य परमात्मा के केवल ज्ञान में झलकते हैं। हृदय में बुरे भाव लाते हो मनुष्य अपराधी और दीनहीन बन जाता है। उसका सारा तेज विदा हो जाता है। पापों का सञ्चय होने लगता है। इसलिये तुम अपने कोमल हृदय को स्वच्छ रखने की आदत डालो।

(२) सब की भलाई सोचो। दृढ़ विचार रखो कि, कभी किसी का अपकार अपने से न होने पावे। यह अभ्यास मनुष्य को देवता बना देता है। परोपकार इसका मूलमन्त्र है। इसी विचार से तुम अपने कुटुम्बियों की लाड़ली बन सकती हो। यही विचार यश बढ़ाता है। जगत् में नामी कर देता है। तुम जिसकी भलाई सोचोगी वह अवश्य ही तुम्हारी भी भलाई करने को तत्पर रहेगा। जैसा वर्त्ताव तुम्हें अपने लिये सुहाता हो, वैसा ही दूसरों से तुम भी करो। क्योंकि, सोने के बदले सोने-चांदी और हीरे मिलते है, कंकड़ के बदले नहीं। यदि कोई तुम्हारे साथ बुराई भी करे, तो तुम अपने मन को मत बिगाड़ो। जैसा कबीरदास जी का वचन अपने अञ्चल की गाँठ मे बाँध लो।

जो तो को कांटा बुवै, ताहि बोय तू फूल।
तोकूं फूल के फूल हैं, वाको हैं तिरसूल॥

(३) क्षमा धारने में बहुत गुण हैं। अतएव क्षमा से क्रोध को जीतना चाहिए। जो कन्या ज़रा-सी बात में लाल-पीली हो जाती है, उसका स्वभाव बड़ा बुरा गिना जाता है।

जो शान्त स्वभाव की हैं, उन्हें क्रोध आता ही नहीं। कोई बुरा वचन सुनने पर वे विचारती हैं कि, यह क्यों कहा गया? यदि अपना कुछ अपराध हो तो, उस कटु वचन को वे लोग दण्ड समझ कर चुप रहती हैं। व्यर्थ में क्रोध नहीं करतीं। और आगे से उस कार्य्य को नहीं करने का सङ्कल्प कर लेती हैं। यदि बिना अपराध के ही कोई दुष्ट स्वभाववाली, लड़ने के लिये तैयार हो जाय, तो उसे भी सदुपदेश देकर, या किसी तरह, समझा बुझा कर, उलटा लड़ने के बदले, शान्त कर देती हैं। ऐसे मनुष्य को पागल समझ कर स्वयं क्रोध नहीं करतीं। सारांश यह है कि, एक हाथ से ताली नहीं बजती। जब तक तुम क्रोध नहीं करोगी, कदापि कलह और अशान्ति नहीं हो सकती। सारे कुटुम्ब से मेल बना रहेगा। और तुम्हारा क्षमा-गुण नष्ट नहीं होने पायगा। क्षमा से जो अन्यान्य विद्यादि गुण तुमने प्राप्त किये हैं, सब में चमक आ जायगी।

सन्तोष और मानसिक सुख की वृद्धि होगी ।

वर्त्तमान समय में भारत की स्त्री-समाज को क्रोध ने खूब घेर लिया है। एक दूसरे से लड़ती झगड़ती और कभी कभी विष खा लेती हैं। यह सब क्रोध का ही कुफल है। पुत्रियो ! तुम अपना स्वभाव शान्त बनाओ, सदा हंस-मुख रहो। कभी गुस्सा मत करो। क्रोध के समान भयंकर शत्रु कोई नहीं है।

रक्खो परस्पर मेल मन से छोड़ कर अविवेकता,
मन का मिलन ही मिलन है, होती उसी से एकता।
तन मात्र के ही मेल से है मन भला मिलता कहीं,
है बाह्य बातों से कभी अन्तःकरण मिलता नहीं !

—भारतभारती

(४) कन्याओं का आभूषण लज्जा है। जो निर्लज्ज हैं वे किसी के समझाने के योग्य नहीं हैं। यहाँ लज्जा से यह मतलब नहीं है, कि तुम बाहर न निकलो—घूँघट काढ़ो। नहीं, तुम तो देवी हो; माता-पिता के छत्र के नीचे स्वच्छन्द हो; तुमको ये ऊपर के स्वांग करने की अभी इतनी ज़रूरत नहीं है, जितनी कि भीतर लज्जागुण भरने की है। यदि अभी से तुम्हारा हृदय निर्लज्ज हो गया, तो फिर अनेक पर्दे लगाने पर भी—बड़े यत्न से रहने पर भी, तुम्हारा कल्याण नहीं हो सकेगा। निम्नलिखित

बातों पर ध्यान दो, इससे तुम लज्जावती होओगी।

(क) व्यर्थ न बोलना—"बिना समझे किसी बात के बीच में बक बक करना निर्लज्जता है। अधिक बोलने से बड़प्पन नष्ट हो जाता है। बुरे भले वचन मुँह से निकलने लगते हैं।"

(ख) मुख से भण्ड वचन बोलने का त्याग करो। कोई ऐसा वाक्य मत उच्चारण करो जिसमें बुरा भाव हो। अश्लील वचन बोलने से आत्मा दूषित होती है और मुख अपवित्र होता है।

(ग) उछल कर चलना भी स्त्री के लिये निर्लज्जता का काम है। अतएव, अपनी रहन-सहन सीधी रखनी उचित है। चाहे खेल-कूद में कितनी ही दौड़ धूप करो, परन्तु गुरुजनों के सामने साधारण में मन्द गति से चलना, सारे अङ्ग उपाङ्गों को सीधा सरल रखना चाहिये। यह स्त्री का मुख्य गुण है।

(घ) किसी पुरुष के साथ बिना कारण बातचीत करना, मुख पर दृष्टि रखना, ये सब निर्लज्जता के कार्य्य हैं। बिना कारण किसी पुरुष से मत बोलो—अपनी दृष्टि सदैव नीची रखो—यही लज्जा है।

(ङ) स्नान और भोजन आदि हर समय में, अपने शरीर को गाढ़े कपड़ों से ढके रखना, उचित है। कपड़े

गाढ़ और सारे शरीर को ढकने लायक पहनने चाहिये। शरीर खुला रखना निर्लज्जता है।

(५) अभिरुचि—मनुष्य के हृदय में चाह पैदा होना ही मन का एक विचित्र काम है। जितने जीव हैं सब के मन में कुछ न कुछ चाह उत्पन्न होती रहती है।

तुम्हारा मन भी कभी खेलने को, कभी पढ़ने को और कभी आराम करने को चलता होगा। जिस तरह चलते हुए घोड़े को घुड़सवार चाहे जिधर को फेर देता है, उसी तरह हम लोग भी अपने मन की चाल को बदलती रहती हैं। पुत्रियो! तुम अपने मन की चाल को अच्छे अच्छे कामों की ओर चलाने की आदत डालो। कभी बेकाम बैठ कर आराम करने की चाह को मत बढ़ने दो। किसी न किसी अच्छे काम में चित्त लगाये रखना उचित है। जब कभी किसी बुरे कर्म की ओर मन झुके, तो उसको सम्भाल लो। मन को वश में रखना चतुर मनुष्यों का काम है। और, मन के अधीन हो जाना नीचता कायरता है।

जब तुम्हारा मन मनोरञ्जक (दिल बहलाव की) वस्तुओं को खोजे तो उसे तास चौपड़ों में न रमा कर अच्छी अच्छी पुस्तकें देखती और सुनती रहो।

बुरी सङ्गति में बैठ कर किसी की निन्दा या चुगली

मत करो। वरन् सहेलियों के साथ अच्छी अच्छी बातें करो। पढ़ने लिखने की चर्चा या सीने पिरोने की बाते किया करो; जिसमें ज्ञान बढ़े। बुरे कामों से मन को हटाने से ही पवित्र अभिरुचि बढ़ती है। यही सुख का मूल है। आत्मोन्नति का यही साधन है।

मन थिर राखे थिर रहे, सब जग को व्यौहार।
मन डिगते सब डिगत हैं, जाति धर्म आचार॥

सुसङ्ग की बड़ाई और कुसङ्ग की बुराई देखो।

"सत्संगति उन्नति का कारण है, कवियों ने ठीक कहा है।
पद्मपत्र के ऊपर जल-कण, मोती की छवि छीन रहा है॥
केवल साधु संग के बल से, नीच नीचता को खोता है।
ज्यों हिल मिल कर मलयाचल से, निम्ब वृक्ष चन्दन होता है"॥

* * *

"सच से नीति-शास्त्र कहता है, दुष्ट संग दुख दाता है।
जिस पथ में पानी रहता है, वही कूप औटा जाता है॥
उनके प्राण नहीं बचते हैं, जिनको दुर्जन अपनाते हैं।
जो गेहूं के संग रहते हैं, वेही घुन पीसे जाते हैं॥
अति खल की संगति करने से, जग में मान नहीं रहता है।
लोह के संग में पड़ने से, घन की मार अनल सहता है॥

—सूक्तिमुक्तावली।

उपयुक्त उपदेश

धर्म वही है जो दुनिया की भलाई करे। धर्म में दया भरी हुई है—निठुरता नहीं। जो गिरने से बचाता है वही धर्म है। जो मोह माया, डाह, घमण्ड, पछतावा, दुःख क्रोध और विरोध से खाली है वही धर्म है। धर्म में सचाई है—फ़रेबी नहीं। धर्म में कोमलता है—कड़ाई नहीं। धर्म में पाखण्ड नहीं है। धर्म में सुख और शान्ति है। धर्म में वाद-विवाद और झगड़ा नहीं है—केवल शुद्धता और सब तरह की सफाई है।

(२)

किसी को कष्ट नहीं देना भी तप है। स्वार्थ को छोड़ देना भी तप है। कर्म के बन्धन से छूट जाना ही तप है। विद्या पढ़ना तप है। ज्ञान कमाना तप है। परमात्मा के ध्यान में मग्न होना तप है। बिना बदला चाहे दान देते जाना त्याग है।

(३)

धोखा देना भी हिंसा है। छल कपट भी हिंसा ही का नाम है। निन्दा करना और बुराई ताकना भी हिंसा है। दुःख में अधीर होना हिंसा है। समय नष्ट करना

हिंसा है। इन्द्रियों के सुख में लिपटना हिंसा है। कुवाच्य बोलना हिंसा है। डरपोक होना हिंसा है। अन्याय भी हिंसा है क्योंकि इन कर्मों से आत्मसुख का घात होता है।

(४)

किसी के अन्नपान में हानि पहुँचानी हिंसा है; स्वयं अपघात कर के या भूखे रह कर मरना भी हिंसा है। अनावश्यक उपवास नहीं करना चाहिए, जो गर्भिणी स्त्रियाँ हैं अथवा छोटे शिशु की माता हैं उन्हें अपने अन्नपान को रोक कर उपवास करने की आवश्यकता नहीं है बल्कि क्रोधादि कषाय मन्द रखना ही श्रेयस्कर है। उपवास करने के लिये पुष्ट और स्वस्थ शरीर चाहिये, तब यह अन्तरङ्ग और बहिरङ्ग लाभ पहुँचाता है—शरीर के रोगों को हटाता है, पाचनशक्ति बढ़ा कर भोजन की लालच को घटाता है।

(५)

भूखे को अन्न देने से पुण्य होता है। उसी तरह प्यासे को पानी पिलाने से बड़ा भारी पुण्य होता है। नंगे को कपड़ा दो। अपढ़ को पढ़ाओ। कंगाल को सुखी बनाओ। सब की सेवा करो। किसी के दुःख में मत हँसो। बड़ों का आदर करो—आज्ञा मानो। कर्त्तव्य मत भूलो। निर्दयी मत बनो। चोरी से बचो। कड़ी वाणी न बोलो।

(६)

जो परमात्मा से प्रेम करे वह बुद्धिमान् है। जिसका दिल साफ़ हो वह बुद्धिमान् है। जो इन्द्रियों को जीते वह चतुर—जो धर्मशास्त्र पढ़े वह चतुर—जो जीवों को अपने समान माने वह चतुर—जो अपनी उन्नति करे वह चतुर जो सच्चा सच्चा काम करे वह चतुर।

(७)

माता को चाहिए कि अपने बच्चों को अच्छी अच्छी बातें सिखलावे। प्रेमी, दानी, आज्ञाकारी, सत्यवादी और दयालु बनावे। चाल-चलन सुधारती रहे। पढ़ाने लिखाने में मुस्तैद रहे। स्वास्थ्य की ओर भी दृष्टि दे। सब तरह से उन्हे सच्चा सुखी बनाए।

(८)

पत्नी को चाहिये कि पति को छोड़ कर किसी से प्रेम न करे। पति ही परमात्मा समान है। पति ही की सेवा और पूजा करती रहे। पति को उदास न बनाए। पति को कभी न भूले।

(९)

जो घर में झगड़ा नहीं करती है उस की प्रशंसा चारों ओर होती है। परिवार के लोगो में मेल रखनेवाली को सब लोग मानते हैं। लज्जावती की शोभा सर्वत्र है।

कुलीना वही है जो सभ्यतापूर्वक रहे। झपट कर न चले। बहुत न हँसे। बकवाद न करे। खूब साफ़ रहे।

(१०)

सब के बच्चे को प्यार करो। सब से नम्र बन कर रहो। घर पर कोई आ जाए उसका अच्छी तरह आदर करो। लालच छोड़ कर सन्तोष को पकड़ो। घर का काम चालाकी से चलाओ, व्यर्थ ख़र्च मत करो। किसी चीज़ का व्यवहार बुरी तरह से न करो

उपदेश-रत्नमाला ।

द्वितीय गुच्छ ।

धार्म्मिक शिक्षाएँ ।

विद्या धर्मेण शोभते

धर्म करत संसार सुख, धर्म करत निर्वाण ।
धर्म पन्थ साधे बिना, नर तिर्यंच समान ॥

धर्मोपदेश
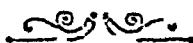
अहिंसाणु व्रत

संसार है एक समुद्र मानो ।
इसे महा दुस्तर दीर्घ जानो ॥
न धर्म-नौका अवलम्ब होगा ।
तो डूबने में न विलम्ब होगा ॥

—पद्यप्रबन्ध

निज धर्म का पालन करो, चारों फलों की प्राप्ति हो ।
दुख दाद आधि व्याधि, सब की एक साथ समाप्ति हो ॥

—भारतभारती

किसी जीव को मत सताओ—सब जीवों के प्राण अपने प्राणों के समान समझो। जैसे अपने प्राण नष्ट होने—अन्न-वस्त्र का नाश होने—से तुम्हें दुःख होता है, वैसे ही सब मनुष्य और पशुओं की आत्मा को भी होता है, अतएव किसी को दुःख मत दो। "हिंसा सर्वत्र गर्हिता"—हिंसा में सब जगह, सब समय पाप है। किसी तरह किसी भले बुरे काम के लिये हिंसा की जाय, तो वह पाप ही है। हिंसा से धर्म्म या किसी तरह का लाभ कभी किसी को नहीं हो सकता।

प्यारी लड़कियो! तुम प्रण कर लो कि हम कभी किसी जीव को जान बूझ कर नहीं सतायँगी; यथाशक्ति अन्य प्राणियों की रक्षा करने में तत्पर रहेंगी; दूसरे हिंसक मनुष्यों को भी अहिंसा का उपदेश करेंगी।

'अपने को यह अपना जीवन जिस प्रकार अति प्यारा है।
अन्य प्राणियों का भी जीवन उससे स्वल्प न न्यारा है।
ऐसा सोच अहिंसा ही को परम धर्म जिसने जाना।
सफल किया, बस, उसी एकने इस जग में अपना आना॥

—पूजाफूल

सत्याणुव्रत।

मिथ्या बोलना महापाप है। इसका सर्वथा त्याग करना चाहिये। कहा है, "झूठ पाप का बाप, बखाना।",
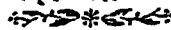
झूठ बोल कर अपने वचन को कदापि मलिन मत करो। पृथवी पर जितने महत्त्व के कार्य दीखते हैं सब सत्य के सहारे ही खड़े हैं। इसलिये सत्यव्रत को अच्छी तरह पालन करो। हँसी-दिल्लगी में भी झूठ बोलने का अभ्यास रखना ठीक नहीं। जिह्वा पर कभी ऐसे वचनों को आने ही नहीं देना चाहिये।

सत्य बराबर तप नहीं—झूठ बराबर पाप"
जहाँ झूठ तहँ नाश है—जहाँ सत्य तहँ आप"—

* * * * *

बड़े पुरष के वचन हैं—वट के बीज समान।
कह थोड़ी पाले घनी—दृढ़ता मेरु, समान"
है बड़ी शक्ति बड़ा बल सत वचन सत संग में।
रंगने वाला हो तो सब को रंग दे एक रंग में।

कठोर वचन, ऐसे वचन जो दूसरों की हानि करनेवाले हों—चुग़ली, निन्दा ये सब झूठ ही में शामिल हैं। किसी की निन्दा होती देख कर तुम भी उस में शामिल मत हो जाओ। यदि शक्ति है तो उस निन्द्य जीव को उसकी बुराइयों पर ध्यान दिलाकर सचेत कर दो और यह न हो सके तो केवल इस बात पर ध्यान रखो कि अपनी निन्दा कभी इस प्रकार न होने लगे। निन्दा के कारणों को अपने पास मत आने दो। सदैव हित, मित, मिष्ट और प्रिय वचन

बोलने का अभ्यास करो। वचनों में बड़ी शक्ति है, जो एक बार निकल कर बड़े बड़े कार्य्य क्षण भर में कर डालते हैं। वचनों से शत्रु, मित्र हो जाते हैं और मित्र भी, शत्रु हो जाते हैं। कवि कहते हैं:—

कागा किस का धन हरै, कोयल किस को देय।
मीठे वचन सुनाय के, जग अपनो करि लेय॥

मीठे वचन सुन कर दुःखी जीवों का दुःख कम होता है, थके को विश्राम होता है और हारे को भी हिम्मत आ जाती है।

सदा सत्य और प्रिय वचन बोलो और अपने कर्णों को ऐसी ही ध्वनि सुनाओ। इसके विपरीत जहाँ कलह, निन्दा, चुगली, पापोपदेश होता हो, उन स्थानों को त्यागो; वहाँ क्षणभर भी ठहरना उचित नहीं है।

पुत्रियो! अपनी स्वार्थ-सिद्धि के लिये और किसी भी कारणवश कदापि मिथ्या भाषण न करो—सत्यव्रत का ही सदैव पालन करो।

अपनी मिठी बोल सों, कोयल पाती मान।
लोग रूप नहिं देखते, गुण पर रखते ध्यान॥

—पूजाफूल

ब्रह्मचर्याणुव्रत ।

पुत्रियो ! ब्रह्मचर्य्य का उपदेश तुम आगे पढ़ चुकी हो उसी के अनुसार अपने शीलरत्न की रक्षा करना प्रत्येक पुत्री का कर्त्तव्य है। व्यभिचारी जीव जो इस लोक में नाना प्रकार की निन्दा सह कर परलोक में दण्ड सहता है उसका वर्णन यहाँ रंच मात्र भी नहीं हो सकता। स्त्री के पास एक ब्रह्मचर्य्य ही ऐसा हथियार है जिससे बड़े बड़े दुष्ट जीवों का निग्रह क्षणमात्र में हो सकता है। इस ब्रह्मचर्य के बल से ही "विशल्याजी" में वह अद्भुत महिमा प्रकट हो गयी थी कि जिससे श्रीलक्ष्मण जी की शक्तिबाण की पीड़ा दूर हो गयी।

अचौर्याणुव्रत ।

हरो नहीं प्रिय वस्तु तुम, कभी किसी की भूल ।
चोरी करना है बुरा, दुख दुर्गति का मूल ॥

—पूजाफूल"

अपने हृदय को उदार रक्खो—किसी दूसरे की भूली, पड़ी, रक्खी हुई वस्तु पर नियत मत डिगाओ। एक तृण मात्र की चोरी भी मनुष्य को नीचा दिखा देती है जगत में बदनाम कर नरक में डाल देती है।

बचपन में कोई वस्तु लुकाने छिपाने का अभ्यास कदापि मत डालो। यही अभ्यास पीछे बड़ा भयानक फल दिखावेगा। प्रिय बालिकाओ! अपने अपने अन्तरङ्ग में नियम कर लो कि प्राण जाने पर भी एक कण भी दूसरे का छिपा कर न लेंगी। जिस कन्या ने अचौर्य्याणुव्रत ले रखा है वह कभी मानहानि का दुःख नहीं भोगती। उसकी उदारता और सत्यता का विकाश प्रकाश सारे भूमण्डल पर फैल कर सर्वसाधारण को वश में कर लेता है। सर्वत्र यश की सुगन्ध फैला देता है।

—:*:*:—

परिग्रह परिमाणाणुव्रत

तृष्णा को दबाकर सदा सन्तोष से रहो, जहाँ तृष्णा है वहाँ दुःख है। तृष्णा के सम्मुख संसार भर के पदार्थ भी यदि करतल गत हो जावें तो कुछ नहीं है। चाहे कितनी ही उत्तमोत्तम वस्तुएँ मिलती जायँ पर जब तक तृष्णा कम न की जायगी सुख नहीं मिलेगा। तृष्णा को कम करना ही सच्चा सुख है। सन्तोष परम निधि है। कहा है किः—

गोधन गजधन वाजि धन, और रतन धन खान।
जब आवे सन्तोष धन—सब धन धूरि समान॥
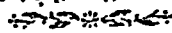
संसार में जो कुछ विभव बल, कुटुम्ब तुम को प्राप्त है उसी में सन्तोष करके अच्छे मार्ग का आश्रय करो। लालच बड़ी बुरी बला है।

इस संसार में घूमते हुए जीवात्मा को पापों का त्याग कर धर्म्म ग्रहण कर सुखी होना परम कर्त्तव्य है। जिस मनुष्य ने सांसारिक वस्तुओं के लोभ में ही अपना सारा समय खो दिया, अन्त तक धर्म्माचरण पर मन स्थिर नहीं किया, उसने सार पदार्थ कुछ भी नहीं पाया—सच्चा आनन्द उससे जीवन भर दूर रहा। जो धर्म्माचारिणी नहीं हैं; जिन्होंने आत्मा, परमात्मा, दुःख, सुख का सिद्धान्त निश्चय नहीं किया है उन में न सच्ची शान्ति है, न सच्चा ज्ञान है और न असली परोपकार ही है।

इन सब बातों की सत्यता धर्म्म के साथ ही साथ है। धर्म्म ही स्वपर-कल्याण में मनुष्य को लगा कर सुख-शान्ति देता है। करोड़ों जन्म के पातक को भस्म कर यह धर्म्म ही मनुष्य को सच्चा सुखी बनाता है। अतएव, प्यारी लड़कियो! तुम भी धर्म्म की शरण आओ। सदा धर्म्म में प्रीति रख, तत्त्वों का विचार करो। जिस मनुष्य को बाल्यकाल से धर्म्म की रुचि नहीं हुई, जिसने आरम्भ में ही धर्म का स्वरूप नहीं समझा, जिसके हृदय पर जन्म से ही अधर्म्म की कायी जम गयी है, उसका अन्त तक भी

सुलझना कठिन नहीं वरन् असाध्य है। और जिस के हृदय में प्रारम्भ से ही धर्म्म-प्रियता समा गयो है, वह काल पाने पर सब कुछ कर सकता है—अपना आत्मकल्याण भली भाँति कर सकता है, तथा जगत को सुखी बना कर आप भी सुखी हो सकता है। पूर्वकाल में जितनी सीता, द्रौपदी, अंजना, चेलना आदि संती साध्वी देवियाँ हो गयो हैं; इन सबों की बाल्यकाल से ही धर्म्म में रुचि थी। इन्होंने बचपन में ही पिता के घर पर धर्म्माधर्म्म सुतत्त्व और कुतत्त्वों का स्वरूप भली भाँति समझ लिया था, और तभी तो पति के घर जा सब कुटुम्बियों को धर्म्म शिक्षण दे अनेकों को धर्म्मारूढ़ किया था।

धर्म्म क्या वस्तु है? इससे क्या लाभ है? इस बात को बिना समझे चित्त का भ्रम नहीं जा सकता, और न धर्म्म से प्रीति ही हो सकती है। कहा है "वस्तु स्वभावो धर्म्मः"। अर्थात् वस्तु का निज स्वभाव ही धर्म्म है—धर्म्म कोई पृथक् वस्तु नहीं है। चीज़ का असली स्वभाव धर्म्म है, और ऊपर के मिलाप से बिगड़ा हुआ स्वभाव ही अधर्म्म है।

जैसे जल का असली स्वभाव है शीतल रहना, पतला स्वच्छ रहना, किसी तरह की गन्ध सुगन्ध का न होना। उसका असली स्वभाव यही है, इससे उलटा अर्थात् मलिन,

गन्ध-सुगन्धमय जल का होना उसका स्वभाव नहीं—बल्कि विभाव है। उसे शुद्ध जल कभी नहीं कह सकते। इसी तरह सब वस्तुओं को समझना चाहिये।

अब हम को यह सोचना चाहिए कि हमारा स्वभाव या धर्म्म क्या है? क्या जिस तरह हम संसार में घूम घूम कर नाना प्रकार के नाच नाच रहे हैं, यही हमारा निज धर्म्म है? नहीं नहीं, यह स्वभाव अपना नहीं है; यदि जीव का यही धर्म्म होता तो सब जगह यही अवस्था पाई जाती सब जीव एक से होते; सो तो है नहीं, हमारा स्वभाव कुछ और है तो तुम्हारा कुछ और। नारकी जीवों का कुछ और तथा मोक्ष में जीवों का स्वभाव अन्य रूप का होता है।

तो फिर हमारा स्वभाव क्या है? हमारा स्वभाव वही है—जो जीवों का मोक्ष में होता है। जैसे मुक्त आत्माओं को अनन्त ज्ञान, अनन्त दर्शन, अनन्त बल और अनन्त सुख है, वैसा ही रहना हमारा भी स्वभाव है। जैसा आज कल हमारा ज्ञानादि हो रहा है यह हमारा असली स्वभाव नहीं है। अनन्त ज्ञान, अनन्त दर्शन याने तीनों लोकों को प्रत्यक्ष देखना, जानना—तीनों लोक की विद्याओं का स्वामी होना—यही हमारा असली स्वभाव है। तीन लोक की सामर्थ्य का स्वामी होकर अपार सुख भोगना ही इस

ज़ीव का असली स्वभाव वा धर्म्म है, और उससे उलटा रहना अधर्म्म है। इसी अपने स्वभाव (धर्म्म) को प्रकट करने के लिये बड़े बड़े पुरुषों ने, पण्डिता स्त्रियों ने व्रत, तप और ध्यान आदि किये हैं, और उनके पूर्ण यत्न से उन्हें अपना असली स्वभाव प्राप्त हो गया है; जिसको प्राप्त कर वे अनन्तकाल तक अपने धर्म्म में स्थिर रहेंगे और सुख भोगेंगे।

अपार सुख क्या है? यह जानने की पुत्रियों को आकुलता हुई होगी। अपार सुख वही है जिसमें आकुलता न हो। जहाँ चिन्ता, घबराहट, शोक, मिथ्या, बन्धन, कलह, द्वेष, मलिनता, कलङ्क, रोग इत्यादि हैं वहाँ सुख नहीं; और जहाँ मनोवाञ्छित वस्तु की प्राप्ति ऐसी हो गयी हो कि फिर उसे छोड़ किसी और वस्तु पर मन न चले, आकुलता न हो, किसी वस्तु के लिये कभी चिन्ता या लालच पैदा न हो, वही सच्चा सुख है। चिन्ता की शुद्धि में ही शान्ति है। मन की स्थिरता में ही सुख है।

क्या संसार में, राजा, महाराजा, सेठ, साहूकार, पण्डित किसी को भी तुमने ऐसा देखा है जिसको ऐसी सर्वोत्तम वस्तु मिल गयी हो कि वह फिर किसी वस्तु के लिये हाय हाय न करे, और दुखी न हो? नहीं, कदापि नहीं देखा होगा। सांसारिक सुख पाने पर भी असली सच्चा

सुख बाक़ी रह जाता है। इसी लिये तृप्ति नहीं होती, और और तरफ़ चित्त ढलकर दुःख बना रहा है। एक न एक बात की तृष्णा लगी ही रहती है। यह चित्त की चाह मोक्ष में पूरी हो जाती है। वहाँ अपने ही ज्ञान-दर्शन में यह जीव ऐसा मग्न हो जाता है कि फिर किसी दूसरी वस्तु की आवश्यकता नहीं रहती। इसी से कहा है कि, अपार सुख मोक्ष में ही है, और इसी को भोगना हमारा सहज स्वभाव—धर्म—है।

इस निज स्वभाव को प्राप्त करने का मार्ग-सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान और सम्यक् चरित्र है। इन्हीं को रत्नत्रय कहते हैं।

सम्यग्दर्शन——सप्त तत्वों में "दृढ़ विश्वास करना"।

सम्यग्ज्ञान——इन्हीं तत्वों को भले प्रकार जानना. सद्विद्या प्राप्त करना"।

सम्यक् चरित्र——ठीक ठीक आचरण करते हुए अपने आप में स्थिर होना। "सच्चरित्रता—एकाग्रता।"

जिन का विश्वास ठीक होता है उनका ज्ञान, और आचरण भी क्रम से ठीक होता है, और जिनके विश्वास में ही फेरफार—संशय है उनका ज्ञान अज्ञान होता है और आचरण दुराचरण है।

अतएव पृथ्वी की समस्त वस्तुओं पर हमारा यथार्थ विश्वास होना चाहिए। हमारे आचार्यों ने विश्व के सभी पदार्थों को सात तत्त्वों में दिखा दिया है। इसलिये पुत्रियो! इन तत्त्वों को ध्यान से पढ़ कर मनन करो— इनपर पूरा विश्वास रक्खो।

तत्त्वोपदेश।

१ जीवतत्व।
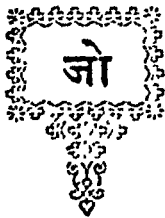
जो सदा जीता है, जिसका कभी नाश नहीं होता, पूर्व्व काल में जीता था और अब तथा आगामी काल में भी जीता रहेगा वही जीव है।

जीव (आत्मा) ज्ञानमय है—इस से ज्ञान दर्शन कभी जुदा नहीं होता। नीच से नीच योनि में और ऊँचे से ऊँचे भव में अपने अपने योग्य ज्ञान अवश्य रहता है। हर एक वस्तु को जानना, देखना, मालूम करना ये सब स्वभाव आत्मा के ही हैं। जब शरीर मृतक हो जाता है
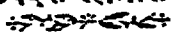
तब उसमें ज्ञानशक्ति कुछ भी नहीं रहती क्योंकि, उसमें आत्मा नहीं रहती।

यह जीव द्रव्य अमूर्त्तिक है, उसकी कोई सूरत या तौल नहीं है। यह जैसे कर्म्म करता है, उनका फल—शरीर में घिरा हुआ—भोगता है। जब अधिक पाप-कर्म्म करता है तब एकेन्द्री, पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु, वनस्पति हो कर घूमता रहता है। इससे भी कड़े पाप करता है तो नरक-निगोद में जा दुःख भोगता है और कभी पशु होता है। तथा, जब शुभ कर्म्म करता है तब राजा महाराजा सेठ साहूकार की पदवी प्राप्त करता है, स्वर्गों में जाता है, देव हो, वहाँ के सुख भोगता है और मनुष्य-भव में अधिक ध्यानादि कर कर्मों से छूट कर मोक्ष भी पा सकता है। जन्म-मरण से आत्मा का कुछ भी नाश नहीं होता केवल शरीर बदलता रहता है आत्मा सदा नित्य है।

जैसे कोई पुराना कपड़ा छोड़ कर नया पहनता है वैसे ही आत्मा पुराना आचरण छोड़ कर नया धारण करता है। यह आत्मा न शस्त्र से कटता है, न आग में जलता है, न धूप में सूखता है, न हवा में डोलता है—उड़ता है। यह सर्व प्रकारेण सनातन है। यह सब विकारों से रहित है—अखण्ड है—सर्वज्ञ शक्तिमान् है।

इस आत्मा के—शरीर और इन्द्रियों की अपेक्षा—

अनेक भेद हैं। इस सँसार में चींटी से लेकर अनेक छोटे तथा ऐसे सूक्ष्म जीव—जो हमारी आँखों से नहीं देखते सब जगह भरे पड़े हैं। परन्तु भावों की अपेक्षा आत्मा के मुख्य तीन भेद हैं। बहिरात्मा, अन्तरात्मा, परमात्मा।

बहिरात्मा—वह है, जिस जीव ने कुछ धर्म्म का भेद नहीं समझा—जिसने यह नहीं समझा कि, मेरा आत्मा पृथक् है—और शरीर पृथक् है, वही बहिरात्मा है। यह दशा बुरी है इसको छोड़ अन्तरात्मा होना चाहिये।

अन्तरात्मा—वह है, जो जीव धर्म्म के मर्म को समझ गया है—जिसको यह ज्ञान हो गया है कि, मेरा आत्मा पृथक्—और शरीर पृथक् है। अन्तरात्मा को ही परमात्मपद मिल सकता है।

परमात्मा—यह वह आत्मा है, जिसने संसार के दुःख समुदाय का नाश कर दिया है, कर्मों से छूट कर निर्लेप, सर्वज्ञ, वीतरागी बन गया है।

सब संसारी जीवों के पीछे आठ कर्म्म लगे हैं—एक आह करे, एक वाह करे, एक हँसता है, एक रोता है। जो कर्म में है वह मिलता है जो कर्म करे वह होता है। १ ज्ञानावरणी—जो आत्मा के ज्ञान को रोके। २ दर्शनावरणी—जो देखने की शक्ति को रोके। ३ मोहिनी—जो
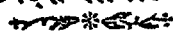
दूसरी वस्तुओं में मोह पैदा करे । ४ अन्तराय—जो आत्मा की प्रबल शक्ति में या लाभ आदि में विघ्न डाले। ५ नाम-कर्म—जिस के उदय से शरीर की रचना बने। ६ गोत्र-कर्म्म—जिससे आत्मा नीचे ऊँचे गोत्र में जन्म ले। ७ आयु—जिसके उदय से संसार में स्थिति रहे। ८ वेद-नीकर्म्म—जिसके उदय से सांसारिक वस्तुओं में सुख दुःख मालूम हो। (ये आठों मूल प्रकृति हैं, इनके उत्तरभेद १३८ हैं।) ये अष्टकर्म्म हम सब जीवों पर एक प्रकार के मैल से लगे हुए हैं। ये पाप-पुण्य करने से घटते बढ़ते हैं; और ध्यान ज्ञान से नष्ट हो जाते हैं। जिस आत्मा ने मनुष्य भव में, संसार से ममत्त्व हटाकर, सर्व विषयों का त्याग कर, बड़े यत्न से शुक्ल ध्यान (उत्कृष्ट ध्यान) कर के पहले के ४ कर्म्मों (ज्ञानावरणी, दर्शनावरणी, मोहिनी, अन्तराय—इन्हें घातिया भी कहते हैं) को नाश कर दिया है वह अर्हत् परमात्मा है।

अर्हन्त भगवान् के ज्ञानावरणी कर्म के नाश से "केवल ज्ञान" उत्पन्न हुआ है, जिस ज्ञान में तीनों लोकों के पदार्थों को एक समय में प्रत्यक्ष जानने की शक्ति है। और, दर्शनावरणी के नाश से तीनों लोकों के प्रत्यक्ष देखने की शक्ति वाला "केवल दर्शन" प्रकट हुआ है।

इन "केवल ज्ञान" और 'केवल दर्शन' से अर्हन्तात्मा

सर्वज्ञ पद को प्राप्त होता है। तीनों लोक उन को इस तरह दीखरहे हैं जैसे हाथ की लकीर हम लोगों को दीखती है।

मोहिनी कर्म के नाश से भगवान् का मोह गल गया है। तीनों लोकों की वस्तु देखते हुए भी किसी में राग-द्वेष नहीं है। सदा वीतराग भावों में ही मग्न हैं। किसी पर कृपा कर प्रसन्न, तथा किसी पर क्रोध करके खेद-खिन्न नहीं हैं। सब पर समता का भव्य भाव रख कर सदा सुखी हैं। क्षुधा, तृषा, रोग, शोक, जरा मरण इत्यादि भगवान् के १८ दोषों का नाश हो गया है।

अन्तराय के नाश से "अनन्त बल, वीर्य सुख लाभादिक" प्रकट हो गये हैं। कभी सुख मे विघ्न नहीं होगा। न कभी बल कम होगा, कोई बाधा विघ्न कभी नहीं आएगा, सदा शुद्ध आत्मिक सुख बना रहेगा। सुखशान्ति की तूती बोलती रहेगी।

इस तरह 'घातिया कर्मों का नाश' कर यह आत्मा "अनन्त ज्ञानादि का धनी" परमेष्ठी कहलाता है। यही हमारे पूज्य हैं। इन्हीं के ध्यान स्मरण से हमारे भी कर्म नाश हो सकते हैं, और हम लोग भी इस अनुपम सुख के भोक्ता हो सकते हैं।

मन के चक्कर में हैं जब तक आफतें हटती नहीं।
कर्म अधीन आत्मा की बेड़ियाँ कटती नहीं

शान्ति सुख आनन्द का तब तो कहीं परकाश हो ।
काम क्रोध और मोह लोभ इन चार का जब नाश हो ॥

'घातिया कर्म्मों का नाश' होते ही, जहाँ पर अर्हन्त भगवान् स्थिर रहते हैं, स्वर्ग से देव लोग आकर समवशरण (बारह सभा) बनाते हैं; जिसमें सब तरह के जीव आकर धर्मोपदेश सुनते हैं। समवशरण में मुनि, गणधर लोग प्रश्न करते हैं और भगवान् उनका यथार्थ उत्तर देते हैं। यह ध्वनि ऐसी निकलती है जिसको पशु-पक्षी आदि जीव अपनी भाषा में और मनुष्य तथा देव अपनी अपनी भाषा में समझ जाते हैं। और धर्मोपदेश पाकर अनेक जीव सुधर जाते हैं। अर्हन्तदेव के मोक्ष होने से कुछ पहले ही देवलोग समवशरण सभा विसर्जन कर देते हैं; और मोक्ष होने पर उनका सन्निधि पूजन कर, सब अपने अपने स्थान को चले जाते हैं। मुनि लोग भगवान् के उपदेश को याद कर एक दूसरे को पढ़ाते हैं, मनन करते हैं, और अन्त में शास्त्रों में संक्षेप से लिख देते हैं। जो आज तक हम लोग पढ़ते पढ़ाते हैं। अनेक वैद्यक-शास्त्र, रसायन-शास्त्र, शिल्प-शास्त्र, धर्म्म-शास्त्र, सब मुनियों के लिखे आज तक पाये जाते हैं और बहुत से प्रायः असावधानता-वश नष्ट हो गये ह। करोड़ों सूर्य्य के समान ज्योति वाले शरीर को त्याग कर; तथा शेष चार—'नाम, गोत्र, आयु, वेदनी' कर्म्मों को

नाश कर स्वल्प काल मात्र में अर्हन्त भगवान् का मोक्ष हो जाता है। मोक्ष होने पर इन्हीं को सिद्ध कहते हैं। परमात्मा के ये ही दो भेद हैं—एक अर्हन्त, दूसरा सिद्ध। इनको सकल परमात्मा और निकल परमात्मा भी कहते हैं। पुत्रियो! इस तरह जीव तत्त्व को समझ कर सब जीवों पर यथायोग्य विश्वास करो। परमात्मा के शुद्ध स्वरूप तथा अपने आत्मा के सच्चे स्वरूप को बड़े बड़े पूज्य धर्म ग्रन्थों से भलीभाँति समझ कर ऐसा निश्चय कर लो कि जिससे कभी किसी तरह का कुछ भ्रम न हो। कभी अर्हन्त सिद्ध के गुण-रहित आत्मा को ईश्वर न मानो यही सम्यग्दर्शन है।

अजीव तत्त्व ।

जीव को छोड़ कर शेष जितनी वस्तुएँ हैं सब अजीव हैं। जिन में ज्ञान नहीं है वे सब अजीव हैं। इनके पाँच भेद हैं। धर्मद्रव्य, अधर्मद्रव्य, आकाशद्रव्य, कालद्रव्य, और पुद्गलद्रव्य।

धर्मद्रव्यादि पहले वाले चार द्रव्य अमूर्त्तिक हैं, केवल एक पुद्गलद्रव्य मूर्त्तिक है । अमूर्त्तिक वस्तु आँखों से नहीं दिखती परन्तु लक्षण से पहचानी जाती है । अपने में ज्ञान कम होने से यदि लक्षणों से पहचानने की शक्ति न हो; तो वे अनुभवी ज्ञानी, जो अपने दिव्य ज्ञान-चक्षुओं से साक्षात् देख कर लिख गये हैं, उस पर पक्का विश्वास करना चाहिए । कहा है—

श्लोक ।

सूक्ष्मं जिनोदितं तत्त्वं हेतुभिर्नैव हन्यते ।
आज्ञा सिद्धं तु तद्ग्राह्यं नान्यथावादिनो जिनः ॥

अर्थात् अर्हन्त के कहे हुए तत्त्व सूक्ष्म हों जो प्रत्यक्ष में न दीखते हों वे भी इतने स्पष्ट हैं कि बाहर के किसी हेतु से उनका खण्डन नहीं हो सकता । उनको मानना और विश्वास करना चाहिए क्योंकि अर्हन्त भगवान् मिथ्यावादी नहीं हैं, वे तो वीतरागी हैं । जिसके रागद्वेष लगा रहता है वही पक्षपात से झूठ बोल देता है, परन्तु उनके रागद्वेष मोहादिक का नाश हो गया है इसलिये वे यथार्थ-वक्ता ही हैं ।

धर्मद्रव्य सारे संसार में फैला हुआ है—इसका कार्य्य इतना ही है कि जीवद्रव्य और पुद्गलद्रव्य को

चलने में सहायता देता है। अधर्मद्रव्य जीव पुद्गल को ठहरने में सहायता देता है।

आकाशद्रव्य——यह लोक तथा परलोक के भेदों से दो तरह का है सब जगह जो पोल दीखती है वह आकाश ही है। आकाशद्रव्य अन्य पाँचों द्रव्यों से अधिक विस्तार-वाला है। इस के बीच में जहाँ तक पुद्गल आदि और पाँच द्रव्य हैं वहाँ तक तो यह लोकाकाश है और इससे आगे जहाँ पर अन्य द्रव्यों का अभाव है केवल आकाश ही है वह अलोकाकाश है। इस अलोकाकाश का अन्त नहीं है।

कालद्रव्य——यह भी अमूर्त्तिक है। यह सब द्रव्यों को वर्तने में समय की मदद देता है। समय, घड़ी, घण्टा आदि पर्य्याय-व्यवहार "काल" ही के हैं।

पुद्गलद्रव्य——यह भी एक मूर्त्तिक द्रव्य है। यह हमारी तुम्हारी आँखों के आगे प्रत्यक्ष दीखता है। जितनी वस्तुएँ नज़र आती हैं इन में दीखने योग्य जो जो पदार्थ हैं, वे सब पुद्गल हैं। हलका, भारी, रूखा, चिकना इत्यादि गुण पुद्गल के ही हैं। इसके छः भेद हैं:—

स्थूल स्थूल——पत्थर, काष्ठ इत्यादि।

स्थूल——तेल, जल इत्यादि ढलकने बहने योग्य पदार्थ।

स्थूल सूक्ष्म—छाया, चाँदनी आदि जो देखने में आवे, परन्तु छूने में सूक्ष्म हो।

सूक्ष्म स्थूल—हवा आदि जिस का काम भारी हो, पर देखने में सूक्ष्म हो।

सूक्ष्म—ये पुद्गल के अत्यन्त बारीक टुकड़े हैं। इनको कर्म वर्गणा कहते हैं। ये पाप पुण्य करने से, आत्मा पर ज्ञानावरणी आदि अष्ट कर्म्म हो—हो कर, लगते हैं और समय पूर्ण होने पर झड़ जाते हैं।

सूक्ष्म सूक्ष्म—ये सब से बिलकुल छोटे पुद्गल के टुकड़े हैं। इस प्रकार दूसरा अजीवतत्त्व समझना चाहिये।

बस साफ़ साफ़ समझ लो कि, परमाणु और उन के पुञ्ज को पुद्गल कहते हैं। वर्ण, रस, गन्ध, स्पर्श, शब्द, छाया, धूप, रूप पुद्गल के कार्य्य हैं।

आश्रव तत्त्व ।

ज्ञानावरणी, दर्शनावरणी आदि अष्ट कर्मों का आत्मा के पास आना 'आश्रव तत्त्व' है। जैसे छेद वाली नाव में जल समाता रहता है, वैसे ही सांसारिक जीवों के पास कर्म आते रहते हैं; मन, वचन, काय, जब तक चलायमान रहते हैं—तब तक बराबर 'आश्रव' रहता है। संसारी जीवों के मन, वचन, काय, कभी पूर्ण स्थिर नहीं होते। अतएव सोते जागते, हर समय, 'आश्रव' होता रहता है। साफ़ तरह से यों कहा जा सकता है कि, "जिन कारणों से जीव के साथ पुण्य—पाप का सम्बन्ध होता है उन्हें ही आश्रव कहते हैं। यदि जीव जलाशय माना जाय और कर्म जल-प्रवाह, तो जिस मार्ग से वह जल-प्रवाह बह कर जलाशय में आवेगा—वही आश्रव कहा जायगा। इसके पाँच प्रधान रूप हैं:—

(१) सत्यदेव, सत्यगुरु और सत्य धर्म को न समझना तथा इसके विषय में मिथ्या विश्वास करना; (२) हिंसादि कामों में प्रवृत्ति होना; (३) प्रमाद अर्थात् कर्तव्य में असावधानता; (४) कषाय अर्थात् लोभ, मोह, क्रोध, और अभिमान करना; (५) योग अर्थात् मन, वचन, और काय की चेष्टाएँ।"

बन्ध तत्त्व

ज्ञानावरणी आदि अष्ट कर्मों का आ कर आत्मा पर लग जाना—ठहर जाना—ही बन्ध है। पुनः मिथ्यात्व और प्रमाद आदि आश्रवों द्वारा ग्रहण किये गये कर्म पुद्गलों का आत्मा के साथ, दूध-जल के मेल के समान, मेल का नाम बन्ध है।

बन्ध चार प्रकार का है—प्रकृति, स्थिति, अनुभाग, प्रदेश। बन्ध के इन रूपों को स्पष्ट समझने के लिये धर्म-ग्रन्थों में मोदक (लड्डू) का उदाहरण दिया गया है:—

(१) जैसे किसी चीज़ के बने हुए लड्डू में वात-रोग नाश करने का स्वभाव है, तो किसी में पित्त को शमन करने का है। इसी तरह कोई कर्मफल आत्मा की ज्ञान-शक्ति को आच्छादित करता है, कोई उसमें मोह-भाव उत्पन्न करता है। यह प्रकृति बन्ध का उदाहरण है।

(२) कोई लड्डू एक दिन, कोई दो, कोई चार और कोई सप्ताह में बिगड़ जाता है इसी तरह आत्मा के साथ लगे हुए कर्म पुञ्ज कोई कुछ दिनो में कोई कुछ वर्षों में और कोई कुछ युगों में, जीव को अपने स्वभावानुसार फल

पहुँचा कर, नष्ट हो जाते हैं । यह स्थिति बन्ध का उदाहरण है।

(३) स्वाद में जैसा कोई लड्डू फीका, कोई मीठा कोई कड़ुवा होता है वैसे ही कर्म-पिण्ड भी कोई मन्द, कोई तीव्र, और कोई तीव्रतर शुभाशुभ फल देने वाला होता है। यह अनुभाग बन्ध हुआ।

अब प्रदेश बन्ध का उदाहरण यों है कि, कोई लड्डू एक तोले का—कोई एक छठांक का और कोई पाव भर का होता है। तद्वत् कोई कर्म-पुञ्ज अल्प, कोई अधिक और कोई अत्याधिक परमाणुओं का बना होता है।

हम जितने बुरे भाव रखेंगे उतने ही बुरे कर्मों का बन्ध बढ़ेगा। ज्ञानावरणी आदि घातियाकर्म हमको अज्ञानी बना कर अन्धे की तरह संसार में घुमावेंगे। और यदि हम हर समय अपने भावों को ठीक रखेंगे—क्रोध लोभ आदि सब से बचा कर—विद्या पढ़ने, पढ़ाने, परोपकार करने भगवद्भक्ति करने, शास्त्र मनन करने में लग जायँगी तो, अच्छे कर्म यानी शुभनाम गोत्रादि का बन्ध होगा जिससे उत्तरोत्तर ज्ञान, वैराग्य, नीरोगता, शरीरबल इत्यादि सामग्रियों को पाकर किसी समय में सब कर्मों से छूट मोक्ष में जा सुखिया हो जायँगी।

सम्बर तत्त्व ।
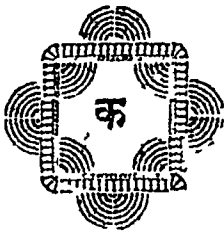
कर्मों के आगमन को रोक देना "सम्बर तत्त्व" है। जीव के साथ कर्म का सम्बन्ध न होने देने वाले हेतुओं का नाम 'सम्बर' है। मन, वचन, काय स्थिर रखने से कर्मों का आगमन नहीं होता। जिस तरह छिद्र वाली नौका के छिद्र रोक दिये जायँ तो पानी नहीं भरता, इसी तरह गुप्ति, समिति, धारने से, बारह भावनाओं का चिन्तवन करने से, क्षुधा तृषादि परीषह सहने से तथा सामायिक आदि चरित्र में स्थिर रहने से, कर्मों का 'आश्रव' नहीं होता। आश्रव का न होना ही 'सम्बर' है।

क्रोध, मान, माया, लोभादि से बच कर ध्यान की शरण लेने से सम्बर होता है।

निर्जरा तत्त्व ।

आत्मा से बंधे कर्मों का पृथक् होना—छूटना—यही 'निर्जरा' है, जो कर्म जीव के साथ बंध गये हैं और जिनके कारण जीव को अनेक अवस्थाएँ भोगनी पड़ती हैं उन कर्मों को तप, चरित्र, ध्यान, जपादि के द्वारा दूर

करने का नाम ही 'निर्जरा' है। यह दो प्रकार की है--(१) सविपाक (२) अविपाक। 'सविपाक निर्जरा, वह है, जो सब जीवों के साधारण हुआ करती है; काल पूरा होने पर कर्मों का झड़ना सविपाक निर्जरा है। और, बिना काल पूरा हुए ही--तथा जप और ध्यान करके कर्मों को छुड़ा देना अविपाक निर्जरा है।

मोक्ष तत्त्व।

यह सातवाँ तत्त्व है। जिस समय सर्व कर्मों की निर्जरा हो जाती है, उसी समय यह जीव सर्व बन्धनों से छूट कर संसार दुःख का नाश कर एक मात्र में तीन लोक के ऊपर जा विराजता है। सिद्ध परमेष्ठी के पद को प्राप्त करता है—यही 'मोक्ष तत्त्व' है। जैसे रूई का फल फटने पर रूई ऊपर को उड़ती है उसी तरह कर्म बन्धन के छूटने पर आत्मा हलका हो, स्वयं तीनों लोक के ऊपर जा विराजता है। वहाँ अनन्त ज्ञानदर्शन से तीनों लोकों को प्रत्यक्ष देखता हुआ तृष्णाजाल-रहित अनुपम सुख में मग्न रहता है। तात्पर्य्य यह है कि, ज्ञानावरणी आदि सभी कर्मों का नाश होने पर आत्मा जब निर्मल और शुद्ध हो जाता है, अर्थात् जीव जब अपने मूल स्वरूप

को प्राप्त हो जाता है, तब उसे मुक्त कहते हैं। ज्ञान प्राप्ति और तप आदि के द्वारा मोक्ष पदवी प्राप्त हो सकती है।

मोक्ष में पुद्‌गलमय शरीर नहीं है! वहाँ के ज्ञान में सुख में—कभी न्यूनाधिकता नहीं होती। सदा एक सा नित्य बना रहता है। जब तक वस्तु की नकली अवस्था रहती है, तभी तक आदि में भी हीनाधिकता होती है; परन्तु जब कि असली हालत प्रकट हो जाती है, तब विकार नहीं पैदा होता। मोक्ष में ही जीव की असली अवस्था प्रकट होती और इसी से वह एक सी रहती है।

पुत्रियो! इन उपर्युक्त तत्त्वों में दृढ़ विश्वास ही सम्यक् दर्शन हैं। साम्यग् दर्शन सहित आत्मा का ज्ञान ही सम्यक् ज्ञान है, और सर्व पापारम्भ से बच कर महाव्रतादि को धारण करना ही 'सम्यक् चरित्र' है।

सब से पहले तुम को अपना विश्वास ठीक रखना चाहिए। अतएव तत्त्वों के स्वरूप को भली भाँति मनन कर के हृदयस्थ कर लो।

'तत्त्व ज्ञान' के बिना अन्यान्य पदार्थज्ञान फीके हैं। जिस मनुष्य को धर्मतत्त्व नहीं मालूम है उस को विद्या का रस नहीं मिल सकता। अतएव विद्या को तत्त्वों के मनन, चिन्तन में खर्च करो।

अन्तिम प्रार्थना।

हे जगवन्धु जगत हितकर्त्ता, श्री प्रभु हम पर दया करो।
ज्ञान सुधा वर्षा कर स्वामी, मन के सारे ताप हरो ॥ १ ॥
केवल ज्ञान-ज्योति से तुमने, जगत् चराचर देख लिया।
सबके स्वामी अंतरयामी, हम को शुभ उपदेश दिया ॥ २ ॥
हम सब नमन करैं तव पद को, धन्य धन्य गुण-आगर हो।
भवज्वाला से जले जीव को, शांति-सुधा के सागर हो ॥३॥
करने से गुणगान तुम्हारा, पाप शाप संताप भगें।
होकर सकल मनोरथ सिद्धि, हृदय मांहि सत ज्ञान जगें ॥४॥
तव शासन पर चलें सदा हम, करुणा कर उपकार करो।
हम बालिका तुम्हारी हे प्रभु, दे विद्या उद्धार करो ॥ ५ ॥

द्वितीय गुच्छ समाप्त।

ॐ शान्ति ! शान्ति !! शान्ति !!!